॥ श्रीः ॥

हरिदास-संस्कृत-ग्रन्थमाला

१२९

महाकवि-श्रीजयदेवविरचितं

# गीतगोविन्दकाव्यम्

'इन्दु' नामक हिन्दीभाषाटीकया सहितम् ।

ज्यों इन्दुसे होती विमल नभकी छटा बहुरागसे,
त्यों 'इन्दु' से होवे सफल यह काव्य भी अनुरागसे ।
जयदेवकविके गीतसे गोविन्दको अति प्रीतिसे,
हे पाठको ! जपिये, निरन्तर द्रौपदीकी रीतिसे ॥





—केदारनाथशर्मा,

# प्रबन्ध-पारिजातः

इसमें परीक्षार्थी छात्रोंको संस्कृत प्रबन्ध रचना लिखने के नियम अत्यन्त सरल रूपमें समझाये गये हैं और तदनुसार परीक्षोपयोगी 'प्रबन्ध लेखनप्रकार' (परीक्षामें आने योग्य निबन्धों का उत्तर) इस तरह सरल और संक्षिप्त में लिखा गया है कि अभ्यास कर लेने पर भी विद्यार्थी परीक्षामें पूरी सफलता प्राप्त कर सकते हैं। इतना ही नहीं अन्तमें(१)'पत्र-लेखन प्रकार'(चिट्ठी-पत्री, आवेदन पत्र आदिका उल्लेख ) तथा प्रसंगोपयुक्त (२) 'सुभाषितगद्यावली'(३)'सुभाषित-पद्यांशावली' और (४)'लौकिक न्यायमाला' आदि विषयोंका समावेश करके आधुनिक चतुरस्र विद्वान् बननेका सुगम रास्ता दिखाया गया है। विश्वास है कि आजतक के प्रकाशित प्रबन्धोपयोगी ग्रन्थों में इस 'प्रबन्धपारिजात' के समान दूसरी कोई भी पुस्तक नहीं है। शीघ्रता कीजिये कठिन परिस्थिति के कारण इसकी बहुत कम प्रतियाँ छपी हैं १।)

# रामवनगमनम्

## सटिप्पण-सान्वय-सुधा-इन्दुमती-चतुष्टयप्लावितम्

याद रखिये सन् ४८ की नवीन नियमावलीके अनुसार निर्णयसागर प्रेससे प्रकाशित वाल्मीकिरामायणके मूलाधार पर यही एक विशुद्ध प्रामाणिक संस्करण प्रकाशित हुआ है। इसकी प्रथम परीक्षोपयोगी'सुधा' टीकामें अन्वय, पर्याय, समास, कोश तथा ग्रन्थोपक्रमसे टिप्पणीमें पौराणिक कथायें भी दी गयी हैं जो कि परीक्षामें प्रश्न आने योग्य है और अन्य किसी भी संस्करणमें इसका उल्लेख नहीं किया गया है। एवं सुधा टीकाके साथ साथ 'इन्दुमती' नामकी विस्तृत भाषा टीकामें श्लोकोंके गूढार्थ अभिप्रायोंको इस तरह सरल शब्दोंमें अभिव्यक्त कर दिया गया है कि विद्यार्थियोंको श्लोकार्थ समझनेमें प्रायः शिक्षकों की आवश्यकता नहीं ही होगी। ग्रन्थके शुरूमें प्रत्येक सर्गका परीक्षोपयोगी संक्षिप्त कथासार भी दे दिया गया है। परिष्कृत अभिनव द्वितीय संस्करण १।।।)

# विदुलोपाख्यानम्

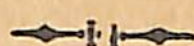
## सान्वय-लीला-विलास-संस्कृत-हिन्दीटीकाद्वयोपेतम्।

सन् ४८ के नवीन पाठ्यक्रमके अनुसार यह ग्रन्थ प्रकाशित किया गया है। इस ग्रन्थकी 'लीला' नामक संस्कृत व्याख्यामें अन्वय, पर्याय, समास, कोशादि देकर श्लोकोंकी अति सरल व्याख्या कर दी गयी है। साथमें 'विलास' नामकी विस्तृत हिन्दी भाषा टीका होनेसे तो इस संस्करणकी उपयोगिता और भी अधिक बढ़ गयी है। प्रथमाके सुकोमलमति विद्यार्थियोंके लिये यही एक सर्वोत्तम संस्करण सिद्ध हो चुका है। शीघ्रता कीजिये इसकी बहुत ही कम प्रतियां बच गयी हैं। द्वितीय संस्करण ।।।)

THE

HARIDĀS SANSKRIT SERIES

129.



महाकवि-श्रीजयदेवविरचितं

# गीतगोविन्दकाव्यम्

पण्डित-श्रीकेदारनाथशर्मणा विरचितया 'इन्दु' नामक
हिन्दीभाषाटीकया विशेषभूमिकया च सहितम् ।



# GITAGOVINDAKĀVYA

OF

S'RĪ JAYADEVA

Edited with INDU Hindi Commentary

BY

Pt. S'RĪ KEDĀRNĀTHA S'ARMĀ





PUBLISHED BY

JAYA KRISHNA DĀS HARIDĀS GUPTA

*The Chowkhambā Sanskrit Series Office,*

Banaras City



1948

Printed at the
VIDYA VILAS PRESS, BENARES CITY.
1948

प्राप्तिस्थानम्—
चौखम्बा संस्कृत पुस्तकालय,
बनारस सिटी।
द्वितीय संस्करण
सं० २००५

मूल्यं १)

॥ श्रीः ॥

# समर्पणम्

आनन्दकन्द परमानन्द

भगवान्

मुकुन्दके कराम्बुजोंमें

त्वदीयं वस्तु गोविन्द ! तुभ्यमेव समर्पये

—केदारनाथ शर्मा

श्रीः

# प्राक्कथन

आदरणीय बहिनो तथा भाइयो !

संस्कृत साहित्यमें श्रीजयदेव कविका गीतगोविन्द अजर अमर तथा अद्वितीय काव्य है। यह अपने ढङ्गका निराला है। इसमें कविने प्रेम-भक्तिकी जो पावनदायिनी निर्मल धारा प्रवाहित की है, उसका एक एक विन्दु प्रेमियों तथा भक्तोंके हृदयोंको उद्वेलित कर देता है। हिन्दी साहित्यके प्रसिद्ध विद्वान् 'परम-प्रेमनिधि रसिकवर' बाबू हरिश्चन्द्रजी भारतेन्दुकी भी हृत्तन्त्री इसके निनाद से ऐसी बजी कि मूलकाव्यके अनुवादमें उसका सारा आनन्द हिन्दी प्रेमियोंके लिए "गीतगोविन्दानन्द" में सुलभ हो गया। इस अनुवादको मूलके साथ पाठकोंके सम्मुख उपस्थित कर देना ही इसके सम्पादकका केवल प्रयास है, इससे अधिक नहीं। यह अनुवाद कैसा हुआ है, इसकी विवेचना प्रत्येक रसिक पाठक पर ही छोड़ दी जाती है। वे इसको पूर्णरूपेण पढ़कर इसका रसास्वाद लें। शुरूमें श्रीजयदेव कविका जीवनचरित्र, भारतेन्दु-कृत चरितावलीसे लेकर दिया गया है। आशा है, पाठकगण इस सद्ग्रन्थसे अवश्य आनन्द उठावेंगे।

अन्तमें प्रिय पाठकोंके प्रति यह भी सूचित करते हुए हर्ष होता है कि इस 'इन्दु' टीकामें जहांतक हो सका है हिन्दी भाषाके वर्त्तमान चलते-फिरते तथा अल्पाक्षरोंवाले शब्दोंका ही प्रयोग किया है। इसी रीतिसे यथा सम्भव ग्रन्थमें वर्णित श्लोकोंके ही शब्दोंका समावेश टीकामें करनेका यत्न किया है। किन्तु' यत्रतत्र भाव स्पष्ट करनेके लिये तथा अनुप्रासमयी भाषा बनानेके लिये कुछ ऊपरसे भी लिखा गया है। यथास्थानमें कोष, छन्दोके लक्षण तथा श्लिष्ट पदोंको टिप्पणीमें झलका दिया है।

तत्पश्चात्—साहित्यसेवी बाबू व्रजरत्नदासजी वकील महोदयको हार्दिक धन्यवाद देता हूं, जिनकी दयादृष्टिसे मैंने कविकी चारु-चरितावली लिखनेमें क्षमता पायी।

पुनश्च—नेपालके प्रसिद्ध तथा प्रतिष्ठित विद्वान् पूज्य पं०शेषराजजी शास्त्री, काव्यतीर्थ तथा पं० ब्रह्मशङ्करजी साहित्यशास्त्री एवं पं० रामचन्द्रजी झा व्याकरणाचार्यके प्रति भी प्रेमानुराग प्रकट करता हुआ विराम लेता हूं, जिन्होंने मुझे गीतगोविन्दकी टीका करनेको बाध्य किया विशेषरूपेण विद्याविलास प्रेसके अध्यक्ष महोदयोंको धन्यवाद दे रहा हूं, जिनकी शुभ कृपासे यह ग्रन्थ आप लोगोंके सम्मुख उपस्थित कर सका।

द्रष्टव्य—कुछ लोगोंके मतानुसार "पद्मावतीचरणचारणचक्रवर्ती" का अर्थ पद्मावती शब्दसे उनकी भार्याका बोधक है परन्तु, अन्योंके मतानुसार पद्मावतीका अर्थ राधा स्वीकार करना अच्छा है। इसी विचार-विमर्शमें पड़कर मैंने भी "पद्मावतीका अर्थ राधा लिखा है क्योंकि प्रार्थनाके समय देववाची शब्द ही उपयुक्त होते हैं, अस्तु। पाठकोंको जैसी अभिरुचि हो वैसा अर्थ ग्रहण करें।

भवदीय—

—केदारनाथ शर्मा

श्रीः

# महाकवि श्रीजयदेवकविका जीवनचरित्र

प्रातःस्मरणीय प्रेम-भक्ति शिरोभूषण श्रीजयदेवकविकी कविताका अमृत-पान करके तृप्त, चकित, घूर्णित तथा मोहित कौन नहीं होता एवं किस देशमें कौनसा ऐसा विद्वान है जो कुछ भी संस्कृत जानता हो वह जयदेवकविकी काव्यमाधुरीका भक्त न हो। जयदेवकविका यह अभिमान कि अङ्गूर तथा ईखकी मिठास उनकी कविताके आगे नीरस ( फीकी ) है नितान्त सत्य है ॥ इस मिठाईको न चींटाका डर है तथा न पुरानी होकर सड़ने-गलनेका भय है। मिठाई तथा नमकीन दोनों है यह नयी बात है ध्यान देने, पढ़ने तथा सुननेकी बात है, पर गूगेका गुड़ है। निर्जन वनमें पर्वतमें जहांपर कि बैठनेको बिछौना भी न हो वहां "गीतगोविन्द" आनन्दकी सभी सामग्री देता है, जहां कोई रसिक, भक्त, प्रेमी, मित्र न हो वहां यह सब कुछ बनकर साथ रहता है जहां गीतगोविन्द है वहीं वैष्णव गोष्ठी है वहीं रसिक समाज है, वहीं वृन्दावन है, वहीं प्रेमसरोवर है, वहीं भाव समुद्र है, वहीं गोलोक है तथा वहीं प्रत्यक्ष परमानन्द है। पर यह भी कोई जानता है कि इस परब्रह्ममय प्रेम-सर्वस्व शृङ्गार-समुद्रके जनक श्रीजयदेव कवि कहां हुए ! कोई नहीं जानता तथा न इनकी खोज करता है। प्रोफेसर ( प्राध्यापक ) लैसेनने लैटिन-भाषामें तथा पूनेके प्रिन्सिपल आरनडल साहबने अंग्रेजी भाषामें गीतगोविन्दका अनुवाद किया, किन्तु, कविका जीवन-वृत्तान्त कुछ भी नहीं लिखा, केवल इतना ही लिख दिया कि सन् ११५० के लगभग जयदेवकवि उत्पन्न हुए। परन्तु धन्य है, बा० रजनीकान्त गुप्तको जिन्होंने सर्व प्रथम इस विषयमें हाथ लगाया तथा "जयदेव चरित्र" नामक एक छोटासा ग्रन्थ इस विषयपर लिखा। यद्यपि समय-निर्णयमें अन्य जीवन चरित्रमें हमारे उनके मतमें अनेक अनैक्य हैं तथापि उनके ग्रन्थसे हमको अनेक सहायता मिली है, यह मुक्त कंठसे स्वीकार करना होगा। तथा इसमें कुछ भी सन्देह नहीं कि उन्हींके ग्रन्थने हमारी अभिलाषाको इस विषयपर लिखनेको प्रबल किया है। "वीरभूमि" से प्रायः दस कोस दक्षिण 'अजयनद' के उत्तर' किन्दुबिल्व ग्राममें

श्रीजयदेवकविने जन्म लिया था। सम्भव है, कि कन्नौजसे आये हुए ब्राह्मणोंमेंसे श्रीजयदेवकविका वंश भी हो। इनके पिताका नाम भोजदेव तथा माताका नाम रामादेवी था। इन्होंने किस समय अपने प्रादुर्भावसे भूमिको विभूषित किया, यह अबतक निर्णय नहीं हुआ। श्रीयुक्त सनातन गोस्वामीने लिखा है कि— बङ्गालके अधिपति महाराज लक्ष्मणसेनकी सभामें जयदेवकवि विराजमान थे। अनेक जनोंका भी यही मत है तथा इस मतके पोषणार्थ लोग कहते हैं कि लक्ष्मणसेनके द्वारपर एक पत्थर खुदा हुआ लगा था जिसके ऊपर यह श्लोक लिखा हुआ था।

"गोवर्द्धनश्चशरणो जयदेव उमापतिः।
कविराजश्च रत्नानि समितौ लक्ष्मणस्य च" ॥

श्री सनातन गोस्वामीके इस लेखपर अब तीन बातोंका निर्णय करना आवश्यक हुआ। प्रथम यह कि लक्ष्मणसेनका क्या काल है। दूसरे यह कि यह लक्ष्मणसेन वही है जो बङ्गालका प्रसिद्ध लक्ष्मणसेन है कि दूसरा है। तीसरे यह कि यह बात विश्वसनीय है कि नहीं कि जयदेवकवि लक्ष्मणसेनकी सभामें थे। प्रसिद्ध इतिहासकार मिनहाजिउद्दीनने 'तबकातेनासिरी' में लिखा है कि जब बखतियार खिलजीने बङ्गाल जीत लिया तब लछमनिया नामक राजा बङ्गालमें राज करता था। इनके मतसे लछमनिया बङ्गालका आखिरी राजा था। किन्तु, बंगदेशके इतिहाससे स्पष्ट है कि लछमनिया नामका कोई भी राजा बङ्गालमें नहीं हुआ। लोग अनुमान करते हैं कि बल्लालसेनके पुत्र लक्ष्मणसेनके माधवसेन तथा केशवसेन। "लाक्ष्मनेय" इस शब्दके अपभ्रंशसे लछमनिया लिखा है। राजशाहीके जिलेसे मेटकाफ नामक एक साहबकी एक पत्थरपर खोदी हुई प्रशस्ति मिली है। यह प्रशस्ति राजा विजयसेनके समयमें प्रद्युम्नेश्वर महादेवके मन्दिरके निर्माणके वर्णनमें उमापतिधरकी बनायी हुई है। डाक्टर राजेन्द्रपालमित्रके मतसे इसकी संस्कृतकी रचनाशैली, नवम, दशम वा एकादश शताब्दीकी है। दुःख है कि इस प्रशस्तिमें रचनाकाल संवत् नहीं है नहीं तो जयदेवकविके समयनिरूपणमें इतनी कठिनाई न पड़ती। इसमें हेमन्तसेन, सुमन्तसेन तथा वीरसेन ये ही तीन नाम विजयसेनके पूर्वपुरुषोंके दिये हैं जिससे प्रकट होता है कि वीरसेन ही वंशका स्थापनकर्त्ता है। विजयसेनके विषयमें यह लिखा है कि उसने कामरूप तथा कुरुमण्डल ( मद्रास तथा पुरीके बीचका देश ) जय

किया था तथा पश्चिम जय करनेके लिए नौकापर गङ्गाके तटमें सेना भेजी थी। तवारीखोंमें इन राजाओंका नाम नहीं है। "आईने अकबरी" का सुखसेन (बल्लालसेनका पिता) विजयसेनका नामान्तर है क्योंकि बाकरगञ्जकी प्रस्तर-लिपिमें जो चार नाम हैं वे विजयसेन, बल्लालसेन, लक्ष्मणसेन, केशवसेन इस क्रमसे हैं। बल्लालसेन बड़ा विद्वान था तथा दानसागर, वेदार्थ स्मृतिसंग्रह इत्यादि ग्रन्थ भी उसके कारण बनें। कुलीनोंकी प्रथा भी बल्लालसेनकी स्थापित है। उसके पुत्र लक्ष्मणसेनके समयमें भी संस्कृत भाषाकी बड़ी उन्नति थी। भट्टनारायण (वेणीसंहारके कवि) के वंशमें धनञ्जयके पुत्र हलायुध पण्डित उसके दानाध्यक्ष थे जिन्होंने "ब्राह्मणसर्वस्व" बनाया तथा इनके दूसरे भ्राता भी बड़े स्मार्त्त आह्निककार थे जिनका नाम पशुपति था। कहा जाता है कि गौडका नगर बल्लालसेनने बसाया था। किन्तु लक्ष्मणसेनके समयसे उसका नाम लक्ष्मणावती (लखनौती) पड़ा। लक्ष्मणसेनके पुत्र माधवसेन तथा केशवसेन थे। राजावलीमें इनके पश्चात् सुसेन वा शूरसेन अधिक लिखा है, तथा मुस्लिम लेखकोंने नौजीव (नवद्वीप) नारायण, लखमन तथा लखमनिया ये चार-नाम लिखे हैं।

अपरञ्च अशोकसेन भी लिखा है परन्तु इन सभोंका ठीक पता नहीं। मुस्लिम लेखकोंके मतसे लखमनिया अन्तिम राजा है जिसने ८० वर्ष राज्य किया तथा बख्तियारके कालमें उसने राज्य छोड़ा। यह गर्भसे ही राजा था। नामका क्रम वीरसेनसे लक्ष्मनियांतक एक प्रकारसे ठीक हो गया, परन्तु इनका समय निर्णय अब भी न हुआ किसी दानपत्रमें संवत् नहीं है। दानसागरके बननेका समय समयप्रकाशके अनुसार १०१६ शके (१०९७ ई०) है इससे बल्लालसेनका राजत्व ग्यारहवीं शताब्दीके आखिरतक अनुमान होता है तथा यह 'आईने अकबरी" से भी मेल खाता है। बल्लालसेनने १०६६ में राज्य आरम्भ किया था। अब सेन वंशका क्रम यों लिखा जा सकता है।

वीरसेन

सामन्तसेन

हेमन्तसेन

विजयसेन वा सुखसेन

बल्लालसेन १०६६

| | |
|---|---|
| | ११०१ |
| लक्ष्मणसेन | ११२१ |
| माधवसेन | |
| केशवसेन | ११२२ |
| लछ्मनिया | ११२३ |

बल्लालसेनका समय १०६६ ई० समयप्रकाशके अनुसार है यदि इसको प्रमाण न मानें तथा फारसी लेखकोंके अनुसार लछ्मनियाके पहले नारायण आदि और राजाओंको भी मानें तो बल्लालसेन अधिक पीछे जा पड़ेंगे। तो अब जयदेवकवि लक्ष्मणसेनकी सभामें थे कि नहीं यह विचार करना चाहिये। हमारी बुद्धिसे नहीं थे। इसके कई दृढ़ प्रमाण हैं। प्रथम तो यह कि उमापतिधर जिसने विजयसेनकी प्रशस्ति बनायी है वह जयदेवकविका समसामयिक था, तो यह यदि मान लिया जाय कि जयदेवकवि, उमापति गोवर्द्धनादि सभी सौ वर्षसे ज्यादा जीवित रहे हैं तब यह हो सकता है कि ये विजयसेन तथा लक्ष्मणसेन दोनों भी सभाओंमें थे। दूसरे चन्दकविने जिसका जन्म सन् ११५० के लगभग है अपने रायसामें प्राचीन कवियोंकी गणनामें जयदेवकवि को भी लिया है, तो डेढसौ वर्ष पूर्व हुए बिना जयदेव कविकी कविताका चन्दके समयतक संसारमें आदरणीय होना असम्भव है गोवर्द्धनने अपनी 'सप्तशती' में "सेनकुलतिलकभूपति" इतना ही लिखा, नाम कुछ नहीं दिया किन्तु उसीकी टीकामें "प्रवरसेन नामा इति" लिखा है। अब यदि प्रवरसेन, हेमन्तसेन वा विजयसेनका नामान्तर मान लिया जाय तथा यह भी मान लिया जाय कि जयदेवकविकी कविता संसारमें बड़ी जल्दी विस्तृत हो गयी थी एवं समयप्रकाशके बल्लालका समय भी प्रमाण किया जाय तो यह अनुमान हो सकता है कि विजयसेनके समयमें अथवा उससे कुछ ही पूर्व सन् १०२५ से १०५० तकमें किसी वर्षमें जयदेवकविका प्राकट्य है तथा ऐसा ही माननेसे अनेक पण्डितों (विद्वानों) की एक वाक्यता भी होती है। यहांपर समय विषय जटिल तथा नीरस निर्णय जो बंगला तथा अंग्रेजी ग्रन्थोंमें है वह न लिखकर सार लिख दिया है। इससे "जयदेव चरित" आदि बंगला ग्रन्थोंमें जो जयदेवकविका समय तेरहवीं वा चौदहवीं शताब्दी लिखा है वह अप्रामाणिक होकर निश्चय हुआ कि जयदेव कवि ग्यारहवी शताब्दीके आदिमें उत्पन्न हुए हैं। जयदेव कविकी बाल्यावस्थाका वर्णन सविशेष कुछ नहीं प्राप्त है। अत्यन्त छोटी अवस्थामें

यह मातृ-पितृ विहीन होगये थे। यह अनुमान होता है। क्योंकि विष्णुस्वामिकृत चरितामृतके अनुसार श्रीपुरुषोत्तम क्षेत्रमें इन्होंने उसी सम्प्रदायके किसी पण्डितसे विद्या पढ़ी थी। इनके विवाहका वर्णन तो अत्यन्त विचित्र है। एक ब्राह्मणने अनपत्य होनेके कारण श्री जगन्नाथजीकी बड़ी आराधना करके कन्यारत्न लाभ किया था इस कन्याका नाम पद्मावती था। जब यह कन्या विवाह योग्य हुई तो श्री जगन्नाथजीने स्वप्नमें उसके पिताको आज्ञा दी कि हमारा भक्त जयदेवकवि अमुक पेड़के नीचे वास करता है उसे तुम अपनी कन्या दे दो। विप्र कन्या लेकर जयदेवकविके समीप आया। यद्यपि जयदेवकविने अपनी अनिच्छा प्रकट की तथापि देवादेशानुसार विप्र उस कन्याको उनके समीप छोड़कर चला गया। जयदेव कविने जब उस कन्यासे पूछा कि "तुम्हारी क्या अभिलाषा है।" तो पद्मावतीने कहा—"आजतक मैं पिताकी आज्ञामें थी अब मैं आपकी दासी हूं ग्रहण करिये वा परित्याग करिये मैं आपका दासत्व न छोड़ूगी" जयदेवकविने उस कन्याके मुखसे ऐसे वचन सुनकर प्रसन्न होकर उसके साथ परिणय कर लिया। अनेक लोगोंका मत है कि जयदेवकविने पूर्वमें एक विवाह किया था उस स्त्रीकी मृत्युके शोकसे खिन्न होकर पुरुषोत्तम क्षेत्रमें रहने लगे। पद्मावती उनकी दूसरी स्त्री थी। इन्हीं पद्मावतीके समय संसारमें आदरणीय कवितारत्नका निकष गीतगोविन्द काव्य जयदेवकविने रचा। गीतगोविन्दके सिवा जयदेवकविकी अन्य कोई कविता नहीं मिलती। 'प्रसन्नराघव' 'पक्षधरी' 'चन्द्रालोक' तथा सीताविहार काव्य विदर्भनगरवासी कौण्डिन्य गोत्रोद्भवमहादेव पण्डितके पुत्र दूसरे जयदेवकविके रचे हुए हैं। जिनका काव्यमें पीयूषवर्ष तथा न्यायमें पक्षधर उपनाम था। वरञ्च कई विद्वानोंका मत है कि तीन जयदेव कवि हुए हैं यथा—१ गीतगोविन्दकार। २ प्रसन्नराघवकार। ३ चन्द्रालोक रचयिता। जिनका नामान्तर पीयूषवर्ष है। पद्मावतीके परिणयके पश्चात् जयदेवकवि अपने स्थापित इष्टदेवकी सेवा निर्वाहार्थ द्रव्य एकत्र करनेकी इच्छासे तथा तीर्थाटन एवं धर्मोपदेशकी रुचिसे निजदेश छोड़कर बाहर निकले। श्रीवृन्दावनकी यात्रा करके जयपुर वा जयनगर होते हुए जयदेवजी मार्गमें चले जाते थे कि डाकुओंने धनके लोभसे उनपर आक्रमण किया तथा केवल धन ही नहीं लिया अपितु उनके हाथ-पांव भी काट लिये, कहते हैं कि किसी धार्मिक राजाके कुछ नौकर लोग इसी रास्तेसे जाते थे। उन लोगोंने

जयदेवकविकी यह दशा देखी तथा अपने राज्यमें उन्हें उठा ले गये। वहां औषध आदिसे इनका शरीर कुछ स्वस्थ हुआ। इसी अवसरपर वे डाकू भी उस नगर में आये तथा साधु वेषमें उस राजाके यहांपर उतरे। तब राजाके घरपर जयदेवकविका बड़ा मान था तथा दान धर्म भी इन्हींके द्वारा होता था, जयदेवकविने इन साधु वेषधारियोंको अच्छी रीतिसे पहचान लिया तथा यदि वे चाहते तो भली भांति अपना बदला चुका लेते, परन्तु उनके सहज, उदार एवं कृपालु चित्तमें इस बातका ध्यानतक न आया, अपितु, दानादिक देकर उनका बड़ा सम्मान किया। विदाके समय भी उन्हें बड़े सत्कारसे अच्छी विदाई देकर विदा किया, तथा राजाके दो भृत्य साथ कर दिये कि अपनी सीमातक उन्हें पहुँचा आवें। मार्गमें उन डाकुओंसे राज्यानुचरोंने पूछा कि इन महात्माने अन्य लोगोंसे अधिक आपका आदर क्यों किया। इसपर उन चाण्डाल डाकुओंने कहा-जयदेवकवि प्रथम एक राजाके यहां रहते थे इन्होंने कुछ ऐसा दुष्कर्म किया कि राजाने हम लोगोंको प्राण हरनेकी आज्ञा दी परन्तु दयावश हमने इनके प्राण न लिये, केवल हाथ-पांव काट कर छोड़ दिया, इसी बातको छिपानेके लिए जयदेव कविने हमारा इतना आदर किया। कहा-जाता है कि मनुष्योंकी आधारभूता पृथ्वी इस अनर्थ मिथ्यापवादको न सह सकी तथा द्विधा विदीर्ण हो गयी। वे डाकू सब उसी गर्त्तमें समा गये तथा परमेश्वरकी कृपासे जयदेवकविके हाथ-पांव पुनः पूर्ववत् हो गये। सेवकों द्वारा यह समाचार सुनकर तथा जयदेवकविसे पूर्ववृत्त ज्ञातकर राजा अत्यन्त विस्मित हुआ। आश्चय-घटना-अविश्वासी-विद्वानोंका मत है कि जयदेवकवि ऐसे सहृदय थे कि उनके स्वभावपर मुग्ध होकर लोगोंने यह गल्प कल्पित कर दी है। तत्पश्चात् जयदेवकविने अपनी स्त्री पद्मावतीको भी बुला लिया। कहते हैं कि एक बार उस राजाकी रानीने ईर्ष्याके वश पद्मावतीकी परीक्षा करनेको उससे कह दिया कि "जयदेव कवि मर गये" उस समय जयदेवकवि राजाके साथ कहीं बाहर गये थे। पतिभक्ता पद्मावतीने यह सुनते ही प्राण परित्याग कर दिये। जब जयदेवकवि आये तथा उन्होंने यह चरित देखा तो श्रीकृष्णनाम सुना उसे पुनर्जीवन दिया किन्तु उसने उठकर कहा कि अब आप मुझे आज्ञा दीजिये मेरा इसीमें कल्याण है कि मैं आपके सामने परम-धाम जाऊं तथा उसने पुनः शरीर त्याग दिया। जयदेवकवि इस कारण उदास होकर अपनी जन्मभूमि केन्दु-

ली ग्राम चले आये तथा शेष जीवनतक वहीं रहे।

श्री जयदेवकविके गीतगोविन्दके जोड़पर गीत-गिरीश नामक एक काव्य बना है किन्तु जो बात इसमें है वह उसमें सपनेमें भी नहीं है। गीतगोविन्दके कई टीकाकार हुए हैं यथा-उदयन गोवर्द्धनाचार्यका शिष्य था तथा जयदेव कविसे भी कुछ पढ़ा था, एक टीका उसकी बनायी है इसके बाद कई टीकाएं बनी हैं। उदयनकी टीका जयदेव कविके सामने बन चुकी थी एवं इसमें भी संशय नहीं कि गीतगोविन्द जयदेवकविके जीवनमें ही समस्त संसारमें प्रचलित हो गया था। गीतगोविन्द दक्षिणमें अधिक गाया जाता है तथा बालाजीमें सीढ़ियोंपर द्रविड़ लिपिमें खुदा हुआ है। श्रीवल्लभसम्प्रदायमें इसका विशेष महत्त्व है अपितु आचार्यके पुत्र गोस्वामी श्री विट्ठलनाथजीकी इसके प्रथम अष्टपदीपर एक रसमय टीका भी बड़ी रोचक है जिसमें दशावतारका वर्णन शृङ्गारपरत्व लगाया है। वैष्णवोंमें प्रणाली है कि अयोग्य स्थलमें गीतगोविन्द नहीं गाते, क्योंकि उनका विश्वास है कि जहां गीतगोविन्द गाया जाता है वहां भगवान्का अवश्य प्रादुर्भाव होता है। इसपर वैष्णवोंमें एक आख्यायिका प्रसिद्ध है। एक वृद्धाको गीतगोविन्दकी "धीर समीरे यमुनातीरे" यह अष्टपदी याद थी वह गोवर्द्धनके नीचे किसी ग्राममें रहती थी। एक दिन वह बैंगनके खेतमें पेड़ोंको सींचती थी तथा अष्टपदी गाती जाती थी। इससे कृष्ण उसके पीछे-पीछे फिरे। श्रीनाथजीके मन्दिरमें जब तीसरे प्रहर उत्थापन हुए तो गोस्वामीजीने देखा कि श्रीनाथजीका बागा फटा है तथा बैंगनके कांटे तथा मिट्टी लगी हुई है इसपर भगवान्से जब पूछा गया तो पता लगा कि अमुक वृद्धाने गीतगोविन्द गाकर मुझे बुलाया इससे कांटे तथा मिट्टी लग गयी क्योंकि वह गाती थी तथा जहां-जहां जाती थी मैं उसके पीछे फिरता था, तबसे गोस्वामीजीने यह आज्ञा वैष्णवोंमें प्रचारकी कि कुस्थलपर कोई गीतगोविन्द न गावे। किंवदन्ती है, कि जयदेव कवि प्रतिदिन गङ्गास्नानके लिए जाते थे। उनका यह परिश्रम देखकर गङ्गाजीने कहा-तुम इतनी दूर क्यों श्रम करते हो मैं तुम्हारे घर आऊंगी। इसीसे अजयनद नामक एक धारमें गङ्गा अभीतक कैंदुली ग्रामके नीचे बहती है।

जयदेवकवि वैष्णव सम्प्रदायमें एक ऐसे उत्तम पुरुष हुए हैं कि सम्प्रदायकी मध्यावस्थामें इनका नाम मुख्यत्व करके लिया गया है यथा—

विष्णुस्वामी समारम्भां जयदेवादि मध्यगा ।
श्रीमद्वल्लभपर्य्यन्तां स्तुमो गुरु परम्पराम् ॥

जयदेवकविका पवित्र शरीर केंदुली ग्राममें समाविस्थ है । यह समाधि स्थान मनोहर लताओंसे वेष्ठित होकर अपनी सुन्दरतासे अद्यापि जयदेवकविके सुन्दर चरित्रका तथा चित्तका परिचायक है ।

जयदेव कवि अत्यन्त कारुणिक तथा धार्मिक थे । भक्तिपूर्ण महत्त्व छटा तथा अनुपम प्रीति-व्यञ्जक उदार-भाव ये दोनों उनके अन्तः करणमें निरन्तर प्रतिभासित होते थे ।

उन्होंने अपने जीवनका अर्द्ध समय उपासना तथा धर्म-चर्चामें बिताया । वैष्णवसम्प्रदायमें इनके ऐसे धार्मिक तथा सहृदय पुरुष विरले ही हुए हैं । जयदेव कवि एक सत्कविथे इसमें जरा भी सन्देह नहीं । यद्यपि कालिदास, भवभूति. भारवि आदिसे वह बढकर कवि नहीं थे पर इनकी अपेक्षा इनको सामान्य भी नहीं कह सकते । बङ्गालमें तो ऐसा सत्कवि कोई आजतक हुआ ही नहीं । ललितपद विन्यास तथा श्रुतिमनोहर अनुप्रासछटा निबन्धसे जयदेवकविकी रचना अत्यन्त ही चमत्कारिणी है । मधुरपद विन्यासमें बड़े-बड़े कवि इनसे निस्सन्देह हारे हुए हैं । जयदेव कविका प्रसिद्ध ग्रन्थ गीतगोविन्द बारह सर्गोंमें विभक्त है जिसमें पूर्वमें श्लोक तथा फिर गीत क्रमसे रखे हैं । इस ग्रन्थमें परस्पर विरह, दूती, मान, गुणकथन तथा नायकका अनुनय तत्पश्चात् मिलन यह सब वर्णित है । ज्यदेवकवि परम वैष्णव थे इससे उन्होंने जो कुछ वर्णन किया है प्रगाढ भक्तिपूर्ण होकर वर्णन किया है । इन्होंने इस काव्यमें रसमयी रचनाशक्ति तथा आकर्षक सद्भावशालित्वका।एक वेष प्रदर्शन किया है । पण्डितप्रवर ईश्वरचन्द्र विद्यासागर स्वप्रणीत संस्कृत विषयक प्रस्तावमें लिखते हैं-"इस महाकाव्य गीतगोविन्दकी रचना जैसी मधुर कोमल तथा ललित है उस तरहकी दूसरी कविता संस्कृत भाषामें बहुत कम हैं । अपितु ऐसे मनोहर पद-विन्यास, श्रवण ललित अनुप्रासछटा तथा प्रसाद गुण अन्य स्थलमें कहीं नहीं" । वास्तवमें रचना विषयमें गीतगोविन्द एक अपूर्व ग्रन्थ है । तथा ताल तो मानों चातुर्थ एवं अनेक रागोंके नामके अनुकूल गीतोंमें अक्षरसे स्पष्ट प्रतीत होता है कि जयदेवकवि बहुत अच्छे गानवेत्ता थे । ऐसा भी कहा जाता है कि गीतगोविन्दको कुछ लोग अष्टपदी तथा अष्टतालसे पुकारते हैं ।

कई विद्वानोंने लिखा है कि गीतगोविन्द राजा विक्रमादित्यकी सभामें गाया जाता था। परन्तु यह बात सर्वथा अश्रद्धेय है। यह कोई अन्य ही विक्रम होंगे जिनकी सभामें गीतगोविन्द गाया जाता था क्योंकि शकारि विक्रमके कई सौ वर्षके बाद जयदेवकविकी उत्पत्ति हुई। हां, कर्णाट कलिङ्ग प्रभृति देशके राजाओंकी सभामें पूर्वमें अवश्य गीतगोविन्द गाया जाता था। अपितु, जोनराजाने अपनी राजतरङ्गिणीमें लिखा है कि श्रीहर्ष जब क्रम सरोवरके समीप घूमतेथे उन दिनों गीतगोविन्द उनकी सभामें गाया जाता था। कहा जाता है कि "प्रिये चारुशीले" इस अष्टपदीमें "स्मरगरल खण्डनं मम शिरसि मण्डनं" इस पदके आगे जयदेव कविकी इच्छा हुई कि "देहि पदपल्लवमुदारम्" ऐसा पद रखें परन्तु, ईश्वरके लिए ऐसा पद रखनेमें उनका साहस नहीं हुआ इससे पुस्तक छोड़कर आप स्नान करने चले गये। भक्तवत्सल, भक्तमनोरथपूरक भगवान इस समय स्नानसे फिरते हुए जयदेवकविके घरपर आये। प्रथम पद्मावतीने जो रसोई तैयार की थी उसे ग्रहण की तत्पश्चात् पुस्तक खोलकर "देहि पदपल्लव-मुदारम्" लिखकर शयन करने लगे। इतनेमें जयदेवकवि आये तो देखा कि पतिप्राणा पद्मावती जो बिना जयदेव कविके भोजनके जलतक नहीं पीती थीं वह भोजन कर रहीं हैं। जयदेवकविने कारण पूछा पद्मावतीने आश्चर्यसे सब वृत्तान्त कहा। इसपर जयदेवकविने जाकर पुस्तक देखी तो "देहि पदपल्लवमुदारम्" यह पद लिखा है, वह जान गये कि यह सब चरित उसी रसिकेन्द्र-शिरोमणि भक्त-वत्सल भगवानका है इससे आनन्दसे गद-गद होकर पद्मावतीकी थालीका प्रसाद लेकर अपनेको कृतकृत्य माना। कहते हैं कि पुरीके राजा सात्विकरायने ईर्ष्याके वशीभूत होकर जयदेवकी कविताकी भांति एक अपना नवीन गीतगोविन्द रचा। इस झगड़ेको निबटानेके लिए कि कौन गीतगोविन्द अच्छा है दोनों गीतगोविन्दोंको पण्डितोंने जगन्नाथमन्दिरमें रखकर बन्द कर दिया। जब यथासमय द्वार खुला तो लोगोंने देखा कि जयदेवकविका गीतगोविन्द जगन्नाथ-जीके हृदयपटलपर लगा हुआ है तथा राजाका दूर पड़ा हुआ है। तब यह देखकर राजा आत्महत्या करनेके लिए उद्यत हुआ, इसपर जगन्नाथजीने उसके समुचित धैर्यके लिए आज्ञा दी कि हमने तुम्हारा भी स्वीकार किया अफसोस मत करो। गीतगोविन्द अंग्रेजी गद्यमें सर विलियम जोन्स कृत तथा पद्यमें आर-नडलसाहब कृत एवं लैटिनमें लासिनकृत, जर्मनमें रुकार्टकृत इसी रीतिसे कई

भाषाओंमें कई लोगों द्वारा कृत तथा अनुवादित हुआ है। हिन्दीमें गद्यानुवाद छोड़कर इसके तीन पद्यानुवाद हैं। प्रथम राजा डालचन्द्रकी आज्ञासे रामचन्द नागर कृत, द्वितीय अमृतसरके सुप्रसिद्ध भक्त स्वामी रत्नहरिदास कृत तथा तृतीय बाबू हरिश्चन्द्र "भारतेन्दु" कृत। इनके अलावा द्रविड, कर्णाटकादिमें भी इसके कई अनुवाद हैं। लोग कहते हैं कि जयदेवकविने गीतगोविन्दके अतिरिक्त एक ग्रन्थ 'रतिमञ्जरी' भी बनाया था परन्तु यह बात निर्मूलक है गीतगोविन्दकारकी लेखनीसे रतिमञ्जरीसा जघन्य काव्य निकले यह कभी सम्भव नहीं है। गङ्गाकी स्तुतिमें जयदेव कविका रचा हुआ एक सुन्दरपद अधिक मिलता है वह उनका रचा हुआ हो तो हो। इस भांति कई शताब्दी हुई कि जयदेवकवि इस भूमण्डलको छोड़कर परम धाम चले गये। किन्तु अपनी कवित्वशक्तिसे आज भी हमारे समाजमें वे सादर स्थित हैं इनके स्मरणार्थ केंदुलीग्राममें अबतक मकर संक्रान्तिके दिन एक बड़ा भारी मेला होता है जिसमें सत्तर अस्सी हज़ार वैष्णव एकत्रित होते हैं तथा इनकी समाधिके चारों ओर गाते-बजाते हुए संकीर्तन करते हैं। भक्तवत्सलकी सदाजय। इति।

---

॥ श्रीः ॥

श्रीजयदेवकविकृतम्-

# गीतगोविन्दकाव्यम्

'इन्दु' नामकहिन्दीटीकासहितम् ।

## प्रथमसर्गः ।

मेघैर्मेदुरमम्बरं वनभुवः श्यामास्तमालद्रुमै-
र्नक्तं भीरुरयं त्वमेव तदिमं राधे ! गृहं प्रापय ।
इत्थं नन्दनिदेशतश्चलितयोः प्रत्यध्वकुञ्जद्रुमं
राधामाधवयोर्जयन्ति यमुनाकूले रहः केलयः ॥१॥

एकदा भगवान् कृष्ण तथा राधा एवं उनके सखा तथा सखियां किसी उपवनमें भ्रमण कर रहे थे। जब सन्ध्या हुई तब नन्दने कहा—"अयि राधे ! आकाश मेघोंसे घिर गया है, यह विपिन-पथ भी तमाल-तरुओंसे व्याप्त होनेसे धूमिल हो रहा है, ये कृष्ण रातमें अकेले डरते हैं, अतः तुम इनकी पथ-प्रदर्शिका बनकर इन्हें गृहपर पहुँचा दो।

नन्दकी सम्मतिके अनुसार राधा, कृष्णकी पथ-प्रदर्शिका बनकर उन्हें गृह पहुंचाने चलीं। मार्गमें यमुना-तटपरके उपवनों तथा लताकुञ्जोंकी शोभा एवं वृक्षोंकी रमणीक छटाएं साथ ही एकान्तकी ललितक्रीडाएं बड़ी सुखद हुईं। उन भगवान् कृष्णकी सदा जय हो ॥ १ ॥

वाग्देवताचरितचित्रितचित्तसद्मा
पद्मावतीचरणचारणचक्रवर्ती ।
श्रीवासुदेवरतिकेलिकथासमेत-
मेतं करोति जयदेवकविः प्रबन्धम् ॥ २ ॥

जिनका चित्त पवित्र-सरस्वतीजीके चरित्रसे ओत-प्रोत है, जो राधिकाके

चरणसेवियोंमें श्रेष्ठ हैं, वे जयदेवकवि यह प्रबन्ध रचते हैं जिसमें श्रीकृष्णकी रासलीला सम्बन्धी रसपूर्ण कथाएं हैं ॥ २ ॥

**यदि हरिस्मरणे सरसं मनो यदि विलासकलासु कुतूहलम् ।**
**मधुरकोमलकान्तपदावलीं शृणु तदा जयदेवसरस्वतीम् ॥ ३ ॥**

यदि आपका अन्तःकरण हरि-चर्चाकी ओर लालायित है तथा आपके कान हरिकी सुललित लीलाओंको श्रवण करना चाहते हैं तो, अति मधुर तथा मनोहर एवं सुललित पदरचनावाली जयदेवकविकी पदावली सुनिये ॥ ३ ॥

**वाचः पल्लवयत्युमापतिधरः सन्दर्भशुद्धिं गिरां**
**जानीते जयदेव एव शरणः श्लाघ्यो दुरूहद्रुते: ।**
**शृङ्गारोत्तरसत्प्रमेयरचनैराचार्यगोवर्द्धन-**
**स्पर्द्धी कोऽपि न विश्रुतः श्रुतिधरो धोयी कविक्ष्मापतिः ॥४॥**

कवि उमापतिधर पदरचना अच्छी करते हैं, अर्थात्—उनकी रचना गौरवमयी नहीं होती । शरणकवि केवल अर्थ गाम्भीर्यमयी रचना करते हैं । गोवर्द्धनाचार्य केवल शृङ्गाररसकी रचना अच्छी कर सकते हैं, अर्थात्—शृङ्गाररसमें उनसे कोई साम्य नहीं कर सकता । धोयी कवि एक बार श्रवणसे केवल स्मरणमात्र रखसकते हैं, अर्थात्-अर्थबोध नहीं कर पाते । शब्द तथा अर्थ-गाम्भीर्यमयी रचना ( सन्दर्भशुद्धि ) तो जयदेवकवि ही कर सकते हैं ॥ ४ ॥

मालवरागे रूपकताले अष्टपदी ॥ १ ॥

**प्रलयपयोधिजले धृतवानसि वेदम्**
**विहितवहित्रचरित्रमखेदम् ॥**
**केशव ! धृतमीनशरीर, जय जगदीश ! हरे ! ॥ध्रुव०॥१॥**

हे मत्स्याकृतिधारण करनेवाले, केशव । आपने प्रलयकालमें बिना प्रयासके समुद्रमें मछलीके रूपको धारण किया, अतः हे जगदीश ! आपकी जय हो ॥१॥

**क्षितिरतिविपुलतरे तव तिष्ठति पृष्ठे**
**धरणिधरणकिणचक्रगरिष्ठे ।**
**केशव ! धृतकच्छपरूप, जय जगदीश ! हरे ! ॥ २ ॥**

हे कूर्माकृतिधारिन्! आपने पीठपर अति विपुल पृथिवीको धारण किया, जिससे आपकी पीठपर चिह्न भी पड़ गये, अतः, हे हरे, हे जगदीश! आपकी जय हो ॥२॥

वसति दशनशिखरे धरणी तव लग्ना।
शशिनि कलङ्ककलेव निमग्ना ।
केशव ! धृतशूकररूप, जय जगदीश ! हरे ! ॥ ३ ॥

हे शूकररूपधारिन्, केशव ! आपके दांतोंके अग्रभागमें चिपकी हुई यह वसुधा चन्द्र-कलङ्ककी शोभाकी तरह दिखलायी पड़ती है अतः, हे जगदीश ! आपकी जय हो ॥ ३ ॥

तव करकमलवरे नखमद्भुतशृङ्गम्
दलितहिरण्यकशिपुतनुभृङ्गम् ।
केशव ! धृतनरहरिरूप, जय जगदीश ! हरे ! ॥ ४ ॥

हे नृसिंहावतार धारिन्, केशव ! आपके करकमलोंमें विचित्र नाखून हैं जिनसे हिरण्यकशिपुके शरीररूपी भ्रमरका विदारण हुआ है, अतः, हे जगदीश ! आपकी जय हो ॥ ४ ॥

छलयसि विक्रमणे बलिमद्भुतवामन
पदनखनीरजनितजनपावन ।
केशव ! धृतवामनरूप, जय जगदीश ! हरे ! ॥ ५ ॥

हे वामनावतारधारिन् ! आपने वामनावतार विचित्र धारण किया, जिससे बलिको छला तथा निजपदकमलके नाखूनोंके नीरसे ( गङ्गाजलसे ) इस लोकको पवित्र किया, इसलिए हे जगदीश, हे हरे ! आपकी जय हो ॥ ५ ॥

क्षत्रियरुधिरमये जगदपगतपापं
स्नपयसि पयसि शमितभवतापम् ।
केशव ! धृतभृगुपतिरूप, जय जगदीश ! हरे ! ॥ ६ ॥

हे परशुरामरूपधारिन् ! आपने परशुरामावतार धारण करके क्षत्रियोंके रक्तसे संसारको स्नान कराकर संसारके पापोंका शमन किया, अतः, हे हरे, हे जगदीश ! आपकी जय हो ॥ ६ ॥

वितरसि दिक्षु रणे दिक्पतिकमनीयम्
दशमुखमौलिबलिं रमणीयम् ।
केशव ! धृतरामशरीर, जय जगदीश ! हरे ! ॥ ७ ॥

हे केशव ! आपने इन्द्रादि दशो दिग्पालोंके प्रीत्यर्थ राक्षसपति रावणके दश शीशोंको, युद्धमें, बलि—प्रदान किया। अतः, हे हरे, हे रामचन्द्ररूपधारिन् ! आपकी जय हो ॥ ७ ॥

वहसि वपुषि विशदे वसनं जलदाभम्
हलहतिभीतिमिलितयमुनाभम् ।
केशव ! धृतहलधररूप, जय जगदीश ! हरे ! ॥ ८ ॥

हे केशव ! आपने अपनी सुन्दर देहपर मेघके सदृश वस्त्र धारण किये हैं जो हलसे डरकर आयी हुई यमुना-तुल्य दिखलायी पड़ते हैं । अतः, हे हलधारिन् ! आपकी जय हो ॥ ८ ॥

निन्दसि यज्ञविधेरहहश्रुतिजातम्
सदयहृदय—दर्शितपशुघातम् ।
केशव ! धृतबुद्धशरीर, जय जगदीश ! हरे ! ॥ ९ ॥

हे केशव ! आपने जिन यज्ञोंमें पशुहिंसा है, उनकी निन्दा की, अतः, हे बुद्धरूपधारिन्, जगदीश ! आपकी जय हो ॥ ९ ॥

म्लेच्छनिवहनिधने कलयसि करवालम्
धूमकेतुमिव किमपि करालम् ।
केशव ! धृतकल्किशरीर, जय जगदीश हरे ॥ १० ॥

हे केशव ! आपने म्लेच्छोंके नाश करनेके लिए(१)धूमकेतुके समान विचित्र रूप धरा। अतः, हे कल्की अवतारधारिन्, जगदीश ! आपकी जय हो ॥ १० ॥

श्रीजयदेवकवेरिदमुदितमुदारम्
शृणु सुखदं शुभदं भवसारम् ।

---

(१) धूमकेतुको हिन्दीमें पुच्छलतारा भी कहते हैं ।

केशव ! धृतदशविधरूप, जय जगदीश ! हरे ! ॥११॥

हे दशविधरूपधारिन्, केशव ! आपकी जय हो हे भक्तो! जयदेवक विरचित सुखप्रद, मनोहर तथा कल्याणकर भवका तत्वरूप यह स्तोत्र ( गीतगोविन्द ) को सुनिये, इससे परम सुख होगा ॥ ११ ॥

वेदानुद्धरते जगन्ति वहते भूगोलमुद्बिभ्रते
दैत्यं दारयते बलिं छलयते क्षत्रक्षयं कुर्वते ।
पौलस्त्यं जयते हलं कलयते कारुण्यमातन्वते
म्लेच्छान्मूर्छयते दशाकृतिकृते कृष्णाय तुभ्यं नमः ॥१॥

हे केशव ! मत्स्यावतारधर वेदरक्षक । कूर्मरूपधारिन्, हे रामरूपधारणकर राक्षस-राज रावणके वधको करनेवाले । हे वामनावतारसे बलिको छलनेवाले ! हे परशुरामावतारसे क्षत्रियोंका नाश करनेवाले ! हे कल्कि अवतारसे म्लेच्छोंका संहार करनेवाले ! भगवान् कृष्ण ! आपको प्रणाम है ॥ १ ॥

गुर्जरराग प्रतिमण्ठताले अष्टपदी गुर्जरीनिःसृततालाभ्यां गीयते ॥१॥

श्रितकमलाकुचमण्डल धृतकुण्डल ए ।
कलितललितवनमाल जय जय देव हरे ॥ ध्रु० ॥ १ ॥

हे कमलाकुचआश्रयधारिन् ! हे कुण्डलधारिन् ! हे कोमल पुष्पमाल्य-धारिन् ! हे देव, हरे ! आपकी जय हो ॥ १ ॥

दिनमणिमण्डलमण्डन भवखण्डन ए ।
मुनिजनमानसहंस ! जय जय देव हरे ॥ २ ॥

हे सूर्यमण्डलके अलङ्कार ! हे संसारके दुःखहारिन् ! हे ऋषिजनोंके चित्त-रूपीहंस ! हे देव, हरे ! आपकी जय हो ॥ २ ॥

कालियविषधरगञ्जन जनरञ्जन ए ।
यदुकुलनलिनदिनेश जय जय देव हरे ॥ ३ ॥

हे कालिय नामक सर्पके मदनाशक ! हे आनन्दवर्धक ! हे यदुकुलरूपी कमलके सूर्य, हे देव, हरे ! आपकी जय हो ॥ ३ ॥

मधुमुरनरकविनाशन गरुडासन ए ।

सुरकुलकेलिनिदान जय जय देव हरे ॥ ४ ॥

हे मधु, मुर, नरक आदि दैत्योंके नाशक। हे गरुड़वाहन! हे देवक्रीड़ाके आदिकारण। हे देव, हरे। आपकी जय हो ॥ ४ ॥

अमलकमलदललोचन भवमोचन ए।

त्रिभुवनभवननिधान जय जय देव हरे ॥ ५ ॥

हे निर्मल कमलपत्र तुल्य नेत्रधारिन्। हे सांसारिक बन्धनोंसे छुड़ानेवाले! हे त्रिलोकीरूपभवनके आदिकारण, हे देव, हरे! आपकी जय हो ॥ ५ ॥

जनकसुताकृतभूषण जितदूषण ए।

समरशमितदशकण्ठ जय जय देव हरे ॥ ६ ॥

हे जनकसुतासे विभूषित! हे खरदूषणवधकर्त्तः! हे युद्धमें रावणवधकारिन्! हे देव! हरे! आपकी जय हो ॥ ६ ॥

अभिनवजलधरसुन्दरधृतमन्दर ए।

श्रीमुखचन्द्रचकोर जय जय देव हरे ॥ ७ ॥

हे नवीन मेघके सदृश उज्ज्वल वेषधारिन्। हे लक्ष्मीमुखरूपीचन्द्रचकोररूप! हे देव, हरे। आपकी जय हो ॥ ७ ॥

तव चरणे प्रणता वयमिति भावय ए।

कुरु कुशलं प्रणतेषु जय जय देव हरे ॥ ८ ॥

हे हरे। हम आपके चरणमें प्रणाम करते हैं, हमारा प्रणाम स्वीकार कीजिये, हे देव! हरे। आपकी जय हो ॥ ८ ॥

श्रीजयदेवकवेरिदं कुरुते मुदम्।

मङ्गलमुज्ज्वलगीतं जय जय देव हरे ॥ ९ ॥

जयदेवकविकृत यह मङ्गलगान मनन वा पठन करनेवालोंको आनन्दप्रद हो हे हरे, देव। आपकी जय हो ॥ ९ ॥

पद्मापयोधरतटीपरिरम्भलग्न—

काश्मीरमुद्रितमुरो मधुसूदनस्य।

व्यक्तानुरागमिव खेलदनङ्गखेद--
स्वेदाम्बुपूरमनुपूरयतु प्रियं वः ॥ १ ॥

लक्ष्मीके आलिङ्गनसे उनके कुचोंपरकी केसर कृष्ण के वक्षस्थलमें लग गयी, वही मानो, प्रत्यक्ष प्रेम है अथवा लक्ष्मीने, भगवान्‌के हृदयपटलपर मोहर कर-दी कि बिना उनकी ( लक्ष्मीकी ) आज्ञाके उसका स्पर्श अन्य रमणियां न करें। ऐसा रतिक्रीड़ासे उत्पन्न पसीने युक्त श्री कृष्णका हृदय आपका मङ्गल करे ॥१॥

वसन्ते वासन्तीकुसुमसुकुमारैरवयवै—
र्भ्रमन्तीं कान्तारे बहुविहितकृष्णानुसरणाम् ।
अमन्दं कन्दर्पज्वरजनितचिन्ताकुलतया
चलद्बाधां राधां सरसमिदमूचे सहचरी ॥ २ ॥

वसन्तऋतुमें माधवी पुष्पोंसे भी अधिक मृदुशरीरवाली, श्रीकृष्णके पीछे पीछे शून्यवनमें पर्यटन करती हुई तथा कामज्वरसे उत्पन्न चिन्ताकी विकलतासे अत्यन्त व्याकुल राधासे उनकी कोई सखी परिहासमें बोली ॥ २ ॥

वसन्तरागेण यतितालेन गीयते ॥ ३ ॥

ललितलवङ्गलतापरिशीलनकोमलमलयसमीरे ।
मधुकरनिकरकरम्बितकोकिलकूजितकुञ्जकुटीरे ॥
विहरति हरिरिह सरसवसन्ते
नृत्यति युवतिजनेन समं सखि विरहिजनस्य दुरन्ते ॥ १ ॥

हे राधे ! सुन्दर लौंगकी लताओंसे स्पर्शित तथा धीरे—धीरे बहता हुआ म-लय समीर सहित और भौंरोंकी अवलीसे गुञ्जित एवं कोयलोंकी कूजनसे कूजित कुञ्जवाले वियोगियोंको क्लेशित करनेवाले इस वसन्त ऋतुमें श्रीकृष्ण तरुणी गोपियोंके साथ नाचते तथा गाते हैं ॥ १ ॥

उन्मदमदनमनोरथपथिकवधूजनजनितविलापे ।
अलिकुलसङ्कुलकुसुमसमूहनिराकुलबकुलकलापे । वि० २ ।

उन्मत्त करनेवाला रतिकामनासे अङ्गनाओंको विलापयुक्त करानेवाला ( वसन्तमें प्रवासपतिका विलखती हैं ) मौसरीके पुष्पोंपर भ्रमरगण भ्रमर रहे हैं

ऐसे वसन्तमें श्रीकृष्ण युवतियोंके साथ आमोद—प्रमोद कर रहे हैं ॥ २ ॥

मृगमदसौरभरभसवशंवदनवदलमालतमाले ।
युवजनहृदयविदारणमनसिजनखरुचिकिंशुकजाले । वि० ३ ।

कस्तूरीकी सुगन्धके समान सुगन्धवाले तमालके नूतन पत्तोंसे सुशोभित तथा तरुणोंके हृदयोंको दहन करनेवाला एवं कामदेवके नाखूनके समान पलाशके पुष्पोंसे प्रफुल्लित वसन्तमें श्रीकृष्ण कामिनियोंके साथ रमण करते हैं ॥ ३ ॥

मदनमहीपतिकनकदण्डरुचिकेसरकुसुमविकासे ।
मिलितशिलीमुखपाटलिपटलकृतस्मरतूणविलासे । वि० ४ ।

कामदेवके सुवर्ण दण्डवाले छत्रके सदृश विकसित नागपुष्प शोभा बढ़ा रहे हैं तथा गुलाबके कुसुमोंपर भौंरे भी ऐसे बैठे हैं, मानिये, कामदेवके तरकसमें बाण भरे हों, ऐसे वसन्तमें श्रीकृष्ण युवती गोपांगनाओंके साथ नृत्य तथा रति· क्रीड़ा कर रहे हैं ॥ ४ ॥

विगलितलज्जितजगदवलोकनतरुणवरुणकृतहासे ।
विरहिनिकृन्तनकुन्तमुखाकृतिकेतकिदन्तुरिताशे । वि० ५ ।

नवीन वरुणवृक्ष निर्लज्ज जगतको देखनेके लिए, मानिये, पुष्पोंको विकसित करके हास्य कर रहे हैं तथा विरही जनोंको नोंचनेके लिये भालेकी नोककी तरह एवं बर्छीके समान हो रहे हैं ऐसे वसन्तमें श्रीकृष्ण युवतियोंके साथ भोग विलास कर रहे हैं ॥ ५ ॥

माधविकापरिमलललिते वनमालिकयातिसुगन्धौ ।
मुनिमनसामपि मोहनकारिणि तरुणाकारणबन्धौ । वि० ६ ।

माधवीलताकी मुग्ध सुगन्धसे अति रमणीय, नूतन मालती तथा चमेलीके सुमनोंसे सुगन्धित, मुनियोंके भी मनोंको मोहनेवाला, युवकोंका स्वाभाविक मित्र ऐसे वसन्तमें गोपिकाओंके साथ श्रीकृष्ण नृत्यपूर्वक विहार कर रहे हैं ॥ ६ ॥

स्फुरदतिमुक्तलतापरिरम्भणमुकुलितपुलकितचूते ।
वृन्दावनविपिने परिसरपरिगतयमुनाजलपूते । वि० ७ ।

विकसित माधवीलताओंके आलिङ्गनसे प्रफुल्लित हुए आम्रवृक्ष, मानिये,

पुलकित होगये हैं, यमुनाके जलसे वृन्दावनकी वसुधा पवित्र हो गयी है, ऐसे वसन्त समयमें श्रीकृष्ण तरुणियोंसे रमण करते हैं ॥ ७ ॥

श्रीजयदेवभणितमिदमुदयति हरिचरणस्मृतिसारम् ।
सरसवसन्तसमयवनवर्णनमनुगतमदनविकारम् । वि० ८ ।

कामदेवके विलासयुक्त तथा सरस वसन्तका यह वर्णन श्रीकृष्णके चरणोंके स्मरणका सारभूत, जयदेवकवि रचित संसारमें विस्तृत होवे ॥ ८ ॥

दरविदलितमल्लीवल्लिचञ्चत्पराग-
प्रकटितपटवासर्वासयन्काननानि ।
इह हि दहति चेतः केतकीगन्धबन्धुः
प्रसरदसमबाणप्राणवद्गन्धवाहः ॥ १ ॥

अर्धप्रस्फुटित चमेलीके पुष्पसे प्रादुर्भूत परागरूप पटवाससे विपिनोंको गन्धवान् करता हुआ, केवड़ेके फूलोंका मित्र, कामदेवके बाणके समान यह समीरण वियोगियोंको सन्ताप रहा है ॥ १ ॥

उन्मीलन्मधुगन्धलुब्धमधुपव्याधूतचूताङ्कुर-
क्रीडत्कोकिलकाकलीकलकलैरुद्गीर्णकर्णज्वराः ।
नीयन्ते पथिकैः कथं कथमपि ध्यानावधानक्षण-
प्राप्तप्राणसमासमागमरसोल्लासैरमी वासराः ॥ २ ॥

आमकी मञ्जरियोंसे बाहर निकलते हुए रस-लोलुप भौंरोंसे कंपायी गयी, आमकी मञ्जरीपर कूजन करनेवाली कोयलके मनोहर मधुरालापोंसे, मानिये, व्याकुलता उत्पन्न हो गयी है ऐसे वसन्तमें चित्तको एकाग्र करके मुहूर्त्तमात्र अपने अन्तःकरणमें प्राण-प्रियाके समागम सुखके स्मरणमात्रसे विरहीजन येन-केन-प्रकारेण समय व्यतीत कर रहे हैं ॥ २ ॥

अनेकनारीपरिरम्भसम्भ्रम-
स्फुरन्मनोहारि विलासलालसम् ।
मुरारिमारादुपदर्शयन्त्यसौ
सखी समक्षं पुनराह राधिकाम् ॥ ३ ॥

अनेकों रमणियोंके विलासके लोलुप कृष्णके समीपसे जाते हुए, दूरसे ही इशारेसे बतलाती हुई कोई सखी राधासे कहने लगी ॥ ३ ॥

रामकरीरागयतितालाभ्यां गीयते ॥ ४ ॥

चन्दनचर्चितनीलकलेवरपीतवसनवनमाली ।
केलिचलन्मणिकुण्डलमण्डितगण्डयुगस्मितशाली ॥
हरिरिहमुग्धवधूनिकरेविलासिनिविलसतिकेलिपरे ॥ध्रु० १॥

हे प्रियम्वदे, राधे ! चन्दन चर्चित नीले शरीरवाले, पीताम्बर वनमालाको धारण करनेवाले, क्रीड़ाके कारण चञ्चल, रत्न जड़े कुण्डलोंसे जिनके गालोंकी शोभा बढ़ गयी है, मन्द-मन्द मुसकानेवाले श्रीकृष्ण क्रीड़ासक्त गोपियोंके समूहमें विहार कर रहे हैं ॥ १ ॥

पीनपयोधरभारभरेण हरिं परिरभ्य सरागम् ।
गोपवधूरनुगायति काचिदुदञ्चितपञ्चमरागम् ॥ हरिरिह० ॥ २ ॥

हे राधिके ! कोई गोपी प्रेमपूर्वक उन्नत स्तनोंके भारसे श्रीकृष्णके स्वरके बाद स्वर देकर उच्चस्वरमें गाती है ॥ २ ॥

कापि विलासविलोलविलोचनखेलनजनितमनोजम् ।
ध्यायति मुग्धवधूरधिकं मधुसूदनवदनसरोजम् ॥ हरिरिह० ॥ ३ ॥

हे राधे ! कोई कोई गोपी चञ्चल नेत्रोंके कटाक्षोंके सञ्चारसे श्रीकृष्णके मुखारविन्दका अधिक ध्यान करती हैं ॥ ३ ॥

कापि कपोलतले मिलिता लपितुं किमपि श्रुतिमूले ।
चारु चुचुम्ब नितम्बवती दयितं पुलकैरनुकूले ॥ हरिरिह० ४ ॥

हे राधिके ! किसी सुन्दर जघनवाली गोपीने कानमें कुछ कहनेके बहाने श्रीकृष्णके रोमाञ्चित गालोंको बड़ी निपुणतासे चूम लिया ॥ ४ ॥

केलिकलाकुतुकेन च काचिदमुं यमुनाजलकूले ।
मञ्जुलवञ्जुलकुञ्जगतं विचकर्ष करेण दुकूले ॥ हरिरिह० ॥ ५ ॥

हे प्रिये ! किसी गोपीने यमुना तटपर सुहावनी वेतसलताके कुञ्जमें क्रीड़ा करनेकी कामनासे श्रीकृष्णके वस्त्रको खींचा ॥ ५ ॥

करतलतालतरलवलयावलिकलितकलस्वनवंशे ।
रासरसे सहनृत्यपरा हरिणा युवतिः प्रशशंसे ॥ हरिरिह०६॥

हे राधे ! एक गोपीने श्रीकृष्णके साथ नाचते हुए तथा ताल देते हुए उनकी वंशीकी ध्वनिमें अपने कङ्कणोंकी लय मिला दी, इसपर श्रीकृष्णने उसकी प्रशंसा की ॥ ६ ॥

श्लिष्यति कामपि चुम्बति कामपि कामपि रमयति रामाम् ।
पश्यति सस्मितचारुपरामपरामनुगच्छति वामाम् ॥ हरिरिह०७॥

हे प्रिये । श्रीकृष्ण किसी गोपीका आलिंगन करते हैं । किसीके साथ विहार करते हैं। किसीको मृदु-मृदु मुसकानपूर्वक देखते हैं, किसी-किसीके पीछे अनुसरण करते हैं ॥ ७ ॥

श्रीजयदेवकवेरिदमद्भुतकेशवकलितरहस्यम् ।
वृन्दावनविपिने ललितं वितनोतु शुभानि यशस्यम्॥हरिरिह०८

जयदेवकविरचित वृन्दावनकी भगवान्‌की यह रासलीला भक्तोंको सुख-दायक तथा यशदायक होवे ॥ ८ ॥

विश्वेषामनुरञ्जनेन जनयन्नानन्दमिन्दीवर-
श्रेणीश्यामलकोमलैरुपनयन्नङ्गैरनङ्गोत्सवम् ।
स्वच्छन्दं व्रजसुन्दरीभिरभितः प्रत्यङ्गमालिङ्गितः
शृङ्गारः सखि मूर्तिमानिव मधौ मुग्धो हरिः क्रीडति॥१॥

हे सखि ! प्रेम तथा अनुरागवश समस्त संसारको आनन्दित करते हुए, नीलकमलोंके सदृश कोमल अङ्गोंसे कामदेवके उत्साहको प्रोत्साहित करते हुए चारों ओर अपनी इच्छानुसार व्रजाङ्गनाओंसे रमण किये हुए सब अङ्गोंमें आलिङ्गित मूर्त्तिमान शृङ्गारके समान श्रीकृष्ण वसन्तमें क्रीडा कर रहे हैं ॥१॥

अद्योत्सङ्गवसद्भुजङ्गकवलक्लेशादिवेशाचल-
प्रालेयप्लवनेच्छयानुसरति श्रीखण्डशैलानिलः ।
किञ्चित्स्निग्धरसालमौलि कुसुमान्यालोक्य हर्षोदया-
दुन्मीलन्ति कुहूः कुहूरिति मुहुस्ताराः पिकानां गिरः ॥२॥

हे राधिके ! इस वसन्तमें यह मलयपर्वतका पवन, मानिये, चन्दन वृक्षोंपर स्थित सर्पोंके मुखोंमें जानेके कारण पीडित होकर, बरफमें स्नान करनेके लिए हिमालयकी ओर जा रहा है तथा कोमल-कोमल आमकी एवं बकुलकी मञ्जरियोंको देखकर कोकिलाएं आनन्द विह्वल होकर 'कुहू-कुहू' मधुर एवं मनोहर गीत गा रही हैं ॥ २ ॥

रासोल्लासभरेण विभ्रमभृतामाभीरवामभ्रुवा-
मभ्यर्णं परिरभ्य निर्भरमुरः प्रेमान्धया राधया ।
साधुत्वद्वदनं सुधामयमिति व्याहृत्य गीतस्तुति-
व्याजादुद्भटचुम्बितः स्मितमनोहारी हरिः पातु वः ॥ ३ ॥

इति गीतगोविन्दकाव्ये सामोददामोदरो नाम प्रथमः सर्गः ॥

रासक्रीडाके आनन्दसे विभ्रमयुक्त गोपियोंके सम्मुखमें ही प्रेम विह्वला राधाने, "आपका सुन्दर मुख अमृतमय है" कहते हुए गीत-प्रशंसाके छलसे श्रीकृष्णके मुखको दृढ़ताके साथ चूम लिया । इस भांतिकी चुम्बन निपुणतापर मन्द मुसकान करनेवाले तथा चित्तको चुरानेवाले श्रीकृष्ण आपका मङ्गल करें ॥ ३ ॥

इस प्रकारसे गीतगोविन्दके सामोददामोदर नामक सर्गकी इन्दु टीका समाप्त हुई ।

---

## द्वितीयः सर्गः ।

विहरति वने राधा साधारणप्रणये हरौ
विगलितनिजोत्कर्षादीर्ष्यावशेन गतान्यतः ।
क्वचिदपि लताकुञ्जे गुञ्जन्मधुव्रतमण्डली-
मुखरशिखरे लीना दीनाप्युवाच रहः सखीम् ॥ १ ॥

जब श्रीकृष्ण सभी गोपिकाओंके साथ एकसा प्रेम करते हुए वृन्दावनमें रासलीला करते थे उस समय राधा, ईर्ष्याके कारण एक लताकुञ्जमें जा छिपीं, वहांपर वृक्षोंकी शाखाओंपर तथा लतावल्लियोंपर मधुपावली गुञ्जायमान हो रही थी, करुणार्द्र चित्तसे एकान्तमें अपनी प्रियसखीसे वे कहने लगीं ॥ १ ॥

गुर्जररागेण यतितालेन गीयते ।

सञ्चरदधरसुधामधुरध्वनिमुखरितमोहनवंशम्

चलितदृगञ्चलचञ्चलमौलिकपोलविलोलवतंसम् ।
रासे हरिमिह विहितविलासम्
स्मरति मनो मम कृतपरिहासम् ॥ १ ॥

हे प्रिये ! मधुर ध्वनिसे परिपूरित तथा अधरामृतसे भी बढ़कर ललित एवं सर्व लोकको मोहनेवाली वंशीके वाद्यक, कटाक्ष करनेवाले, वंशी बजाते समय चञ्चल मुकुट तथा किरीटको धारण करनेवाले, विलासी, तथा मेरे साथ हासपरिहास करनेवाले श्रीकृष्णको मेरा हृदय चाहता है ॥ १ ॥

चन्द्रकचारुमयूरशिखण्डकमण्डलवलयितकेशम् ।
प्रचुरपुरन्दरधनुरनुरञ्जितमेदुरमुदिरसुवेशम् ॥रासे०२॥

हे सखि ! सुन्दर चित्रवर्णवाले मोरपंखोंसे अपने केशोंको कुञ्चन (घुँघुराने) के समान सजानेवाले, जिस कारण कई इन्द्रधनुषोंके समान, शरीर धारी कृष्णको मेरा चित्त चाहता है ॥ २ ॥

गोपकदम्बनितम्बवतीमुखचुम्बनलम्भितलोभम् ।
बन्धुजीवमधुराधरपल्लवमुल्लसितस्मितशोभम्॥रासे० ३॥

हे प्रिये ! गोपजनोंकी वधुओंके मुख चूमनेमें लोभी तथा दुपहरियाके फूलके समान लाल लाल ओष्ठरूपी पल्लववाले, धीरे-धीरे हंसनेवाले मुखवाले कृष्णका मैं ध्यान करती हूं ॥ ३ ॥

विपुलपुलकभुजपल्लववलयितवल्लवयुवतिसहस्रम् ।
करचरणोरसि मणि-गणभूषणकिरणविभिन्नतमिस्रम् ॥ ४ ॥

हे सखि ! बड़ी तथा नवीन पुलकित पत्तोंकी भांति भुजाओंसे गोपांगनाओंका आलिङ्गन करनेवाले, हाथ-पांव तथा छातीपर धारण किये रत्नोंके आभूषणोंसे बिखरती हुई ज्योतिसे अन्धकारका अपहरण करनेवाले, कृष्णको मेरा मन चाहता है ॥ ४ ॥

जलदपटलचलदिन्दुविनिन्दकचन्दनतिलकललाटम् ।
पीनपयोधरपरिसरमर्दननिर्दयहृदयकपाटम् ॥ रासे० ५ ॥

मेघकी घटाके बीच-बीच शोभित होनेवाले चन्द्रको भी जीतनेवाला चन्दनका

तिलक ललाटपर धारण करनेवाले, गोपियोंके उन्नत कुचोंके प्रान्तभागोंके मर्दन करनेमें कठोर छातीवाले, कृष्णका मैं चित्तसे स्मरण करती हूं ॥ ५ ॥

**मणिमयमकरमनोहरकुण्डलमण्डितगण्डमुदारम् ।**

**पीतवसनमनुगतमुनिमनुजसुरासुरवरपरिवारम् ॥रासे० ६॥**

पन्ना आदि मणियोंसे युक्त मगरकी आकृतिके कुण्डलको धारण करनेसे उनकी प्रभासे जिनके गाल शोभित हैं तथा पीताम्बरधारी, ऋषि मनुष्य, देवता, दैत्य परिवारधारी कृष्णका मैं अन्तःकरणसे ध्यान करती हूं ॥ ६ ॥

**विशदकदम्बतले मिलितं कलिकलुषभयं शमयन्तम् ।**

**मामपि किमपि तरङ्गदनङ्गदृशा मनसा रमयन्तम् ॥रासे० ७॥**

भव्य कदम्बके नीचे प्राप्त हुए, कलियुगी पापोंके भयको दूर करनेवाले कटाक्षादि तथा हृदयसे मेरे साथ रमण करनेवाले कृष्णका मैं ध्यान करती हूं ॥ ७ ॥

**श्रीजयदेवभणितमतिसुन्दरमोहनमधुरिपुरूपम् ।**

**हरिचरणस्मरणं प्रति सम्प्रति पुण्यवतामनुरूपम् ॥रासे० ८॥**

जयदेव कविविरचित अत्यन्त सरस तथा आकर्षक श्रीकृष्णकी शोभावर्णन करनेवाला यह काव्य श्रीकृष्णके चरणोंको स्मरण करनेवाले पुण्यात्माओंको आनन्दप्रद होवे ॥ ८ ॥

**गणयति गुणग्रामं भ्रामं भ्रमादपि नेहते**
**वहति च परितोषं दोषं विमुञ्चति दूरतः ।**
**युवतिषु चलत्तृष्णे कृष्णे विहारिणि मां विना**
**पुनरपि मनो वामं कामं करोति करोमि किम् ॥ १ ॥**

हे प्रिये ! अन्यांगनाओंमें सदा स्नेह करनेवाले, मेरे बिना रासलीला रचनेवाले, कृष्णके लिए मेरा चित्त चञ्चल होता हुआ भी, उन्हीं कृष्णको चाहता है। मैं क्या करूं ? मेरा चित्त कृष्णको—उनके दोषकरने पर भी—भूलनेकी अभिलाषा नहीं करता, अपितु उन्हींकी प्रशंसा श्रवणकर हर्षान्वित होता है ॥ १ ॥

**मालवरागेण एकतालीतालेन गीयते ॥ ६ ॥**

**निभृतनिकुञ्जगृहं गतया निशि रहसि निलीय वसन्तम् ।**

चकितविलोकितसकलदिशा रतिरभसभरेण हसन्तम् ।
सखि हे केशिमथनमुदारं रमय मया सह
मदनमनोरथभावितया सविकारम् ॥ ध्रु० ॥ १ ॥

हे सखि ! निश्चल लतागृहमें आयी हुई, बार-बार इधर-उधर देखनेवाली, रातमें मेरे साथ एकान्तमें रमण करनेवाले रतिके उत्साहसे मन्द-मन्द हंसनेवाले केशी नामक राक्षसके मारनेवाले, उदारचरित कामातुर कृष्णके साथ मुझे मिला दो ॥ १ ॥

प्रथमसमागमलज्जितया पटुचाटुशतैरनुकूलम्
मृदुमधुरस्मितभाषितया शिथिलीकृतजघनदुकूलम् ॥सखि०२॥

हे प्रिये ! प्रथम समागमकी तरह लज्जाके वशीभूत होनेवाली मन्द तथा मधुरभाषिणी, ( जो मैं हूं ) मुझसे बड़ी पटुताके साथ अनेकों प्रशंसनीय वाक्योंको बोलने वाले, मेरी जांघपरकी साड़ी हटानेवाले, कृष्णको मुझसे मिला दो ॥२॥

किसलयशयननिवेशितया चिरमुरसि ममैव शयानम्
कृतपरिरम्भणचुम्बनया परिरभ्य कृताधरपानम् ॥सखि०३॥

हे प्रिये ! कोमल-कोमल नवीन पत्तोंकी शय्या रचनेवाली तथा आलिङ्गन करके प्रियको चूंमनेवाली, मेरे वक्षःस्थलपर दीर्घ समयतक शयन करनेवाले, मेरा आलिङ्गन करके अधरोष्ठका पान करनेवाले श्रीकृष्णसे मुझे मिला दो ॥३॥

अलसनिमीलितलोचनया पुलकावलिललितकपोलम् ।
श्रमजलसिक्तकलेवरया वरमदनमदादतिलोलम् ॥सखि०४॥

हे प्रिये ! रतिजनित आनन्दसे उत्पन्न आलस्यसे आंखोंको मीचनेवाली तथा रतिके परिश्रमसे निकले हुए पसीनेसे भींगी देहवाली, मेरे साथ रोमाञ्चकारी तथा सुन्दर गालवाले एवं कामदेवके मदसे अति चञ्चल श्रीकृष्णको मुझे मिला दो ॥४॥

कोकिलकलरवकूजितया जितमनसिजतन्त्रविचारम् ।
श्लथकुसुमाकुलकुन्तलया नखलिखितघनस्तनभारम् ॥सखि०५॥

हे प्रिये ! रतिके समय कोयलकी वाणीके समान शब्द करनेवाली तथा रति-परिश्रमसे ढीली-ढाली, फूलोंसे गूंथी हुई अलकावलीवाली, मेरे साथ कामदेवके

नियम ( तन्त्र ) को जीतनेवाले तथा कठोर कुचोंपर नख-क्षत करनेवाले श्रीकृष्णको मिला दो ॥ ५ ॥

**चरणरणितमणिनूपुरया परिपूरितसुरतवितानम् ।**

**मुखरविशृङ्खलमेखलया सकचग्रहचुम्बनदानम् ॥ सखि०॥ ६ ॥**

हे सखि ! रतिके समय पैरोंमें पड़े आभूषणोंमें जड़े घुंघरुओंको झङ्कारनेवाली, करधनीके घुंघरू आदिको बजानेवाली मेरे साथ केलि-कलहको विस्तारसे परिपूर्ण करनेवाले, मेरे जूड़ेको खींचकर चुम्बन लेनेवाले, श्रीकृष्णको मेरे साथ मिला दो ॥ ६ ॥

**रतिसुखसमयरसालसया दरमुकुलितनयनसरोजम् ।**

**निःसहनिपतिततनुलतया मधुसूदनमुदितमनोजम् ॥ सखि०॥७॥**

हे आलि ! रतिके समय आलसिन, अशक्ता तथा मुर्झायी हुई देहरूपी लतावाली, मेरे साथ, अर्धस्फुटित नयनरूपी कमलोंको मूदनेवाले मधुनामक राक्षसके मारनेवाले, जाग्रत कामदेववाले, श्रीकृष्णको मिला दो ॥ ७ ॥

**श्रीजयदेवभणितमिदमतिशयमधुरिपुनिधुवनशीलम् ।**

**सुखमुत्कण्ठितगोपवधूकथितं वितनोतु सलीलम् ॥ सखि०८॥**

जयदेवकवि वर्णित श्रीकृष्णका रति वर्णन करनेवाला उत्कण्ठिता गोपवधुओंसे कहा हुआ यह काव्य आपको सुख देवे ॥ ८ ॥

**हस्तस्रस्तविलासवंशमनृजुभ्रूवल्लिवद्बल्लवी**

**वृन्दोत्सारिदृगन्तवीक्षितमतिस्वेदार्द्रगण्डस्थलम् ।**

**मामुद्वीक्ष्य विलज्जितस्मितसुधीमुग्धाननं कानने**

**गोविन्दं व्रजसुन्दरीगणवृतं पश्यामि हृष्यामि च ॥ १ ॥**

हे प्रिये ! मुझे देखकर जिनके हाथोंसे मोहनी वंशी गिर पड़ी, तिरछी चितवनवाली गोपिकाओंसे कटाक्ष किये गये, गोपाङ्गनाओंसे परिवेष्टित, पसीनेसे गीले-गीले गालवाले मुझे देखकर लज्जा युक्त हंसी हंसनेवाले, श्रीकृष्णको मैं देख रही हूँ तथा आनन्दित हो रही हूँ ॥ १ ॥

**दुरालोकस्तोकस्तबकनवकाशोकलतिका**

**विकासः कासारोपवनपवनोऽपि व्यथयति ।**

अपि भ्राम्यद् भृङ्गीरणितरमणीयानमुकुल-

प्रसूतिश्चूतानां सखि ! (१) शिखरिणीयं सुखयति ॥ २ ॥

हे सखि ! ये नवीन-नवीन अशोककी लताओंके छोटे-छोटे गुच्छोंका खिलना ( विकसकत्व ) देखना भी दुःखद है, यह देखो, तालाबके उपवनोंका पवन भी सन्तापता है, ये आम्रवृक्षोंकी मञ्जरियोंपर जो भ्रमरियां गा रही हैं सो भी दुःश्राव्य है ॥ २ ॥

साकूतस्मितमाकुलाकुलगलद्धम्मिल्लमुल्लासित-

भ्रूवल्लीकमलीकदर्शितभुजामूलार्द्धहस्तस्तनम् ।

गोपीनां निभृतं निरीक्ष्य दयितं काश्चिचिरं चिन्तय-

न्नन्तर्मुग्धमनोहरो हरतु वः क्लेशं नवः केशवः ॥ ३ ॥

इति श्रीगीतगोविन्दे अक्लेशकेशवोनाम द्वितीयः सर्गः ॥२॥

साभिप्राय मुसकानवाले, अस्त-व्यस्त केशपाशवाली, सुन्दर भौंहरूपी लतावाली, किसी बहानेसे भुजा, केश आधा हाथ, चूचियों ( कुच ) को दिखाने वाली गोपिकाओंके भावों देखकर किसी रमणीका दीर्घकालतक स्मरण (ध्यान) करनेवाले, मधुर तथा चितचोर युवा केशव आपके क्लेश हरें ॥ ३ ॥

इस प्रकारसे गीतगोविन्द काव्यके अक्लेश केशव सर्गकी "इन्दु"

नामक हिन्दी टीका समाप्त हुई ॥

---

## तृतीयसर्गः ।

कंसारिरपि संसारवासनाबद्धशृङ्खलाम् ।

राधामाधाय हृदये तत्याज व्रजसुन्दरीः ॥ १ ॥

विश्वकी वासनाओंको बांधनेवाली, शृङ्खलारूपी राधाको अपने हृदयमें रख कर कंसके रिपु श्रीकृष्णने व्रजाङ्गनाओंको त्याग दिया ॥ १ ॥

इतस्ततस्तामनुसृत्य राधिका-

मनङ्गबाणव्रणखिन्नमानसः ।

---

( १ ) शिखरिणी छन्दका लक्षण भी है । यथा-रसैरुद्रैश्छिन्ना यमनशभ लागः शिखरिणी ।

कृतानुतापः स कलिन्दनन्दिनी-
तटान्तकुञ्जे निषसाद माधवः ॥ २ ॥

माधव, इतस्ततः अनेकों स्थलोंमें राधाका अन्वेषण करके काम-बाणोंसे उद्वेजित चित्त होकर, पश्चात्ताप करते हुए, यमुना किनारे लतागृहमें जा बैठे ॥२॥

गुर्जररागेण यतितालाभ्यां गीयते ॥ ७ ॥

मामियं चलिता विलोक्य वृतं वधूनिचयेन ।
सापराधतया मयापि न वारितातिभयेन ॥
हरि हरि हतादरतया गता सा कुपितेव ॥ ध्रु० ॥ १ ॥

अत्यन्त खेद है कि वह राधा मुझे युवतियोंके मण्डलमें देखकर मानभङ्गके भयसे कोप करके चली गयी, मैं भी दोषी था, अतः रोक भी न सका ॥ १ ॥

किं करिष्यति किं वदिष्यति सा चिरं विरहेण ।
किं जनेन धनेन किं मम किं गृहेण सुखेन ॥ हरि० ॥२॥

वह कुपिता राधा दीर्घवियोगसे न जाने क्या करेगी, क्या कहेगी ? हन्त ! अब उसके बिना धन, जन, गृहादि सभी वृथा हैं ॥ २ ॥

चिन्तयामि तदाननं कुटिलभ्रुरोषभरेण ।
शोणपद्ममिवोपरि भ्रमताकुलं भ्रमरेण ॥ ३ ॥

अत्यन्त रोषके कारण टेढ़ी भौंहवाली, घूमते हुए भौंरायुक्त लाल कमलके समान उस राधाके मुखारबिन्दका ध्यान करता हूँ ॥ ३ ॥

तामहं हृदि सङ्गतामनिशं भृशं रमयामि ।
किं वनेऽनुसरामि तामिह किं वृथा विलपामि ॥ हरि० ॥४॥

यदि हम उस हृदय हारिणी राधापर अत्यन्त अनुराग रखते हैं तो वनमें क्यों अनुसरण करें ? क्यों वृथा विलाप करें ? ॥ ४ ॥

तन्वि ! खिन्नमसूयया हृदयं तवाकलयामि ।
तन्न वेद्मि कुतो गतासि न तेन तेऽनुनयामि ॥ हरि० ॥५॥

हे तन्वि ! मैं अनुमान करता हूँ कि आपका मन ईर्ष्याके कारण क्षुब्ध हो गया है, किन्तु, यह नहीं जानता कि आप कहां गयीं ? जिससे आपका अनुनय करता ॥५॥

दृश्यसे पुरतो गतागमेव मे विदधासि।
किं पुरेव ससंभ्रमं परिरम्भणं न ददासि ॥ हरि० ॥६॥

हे राधिके ! आप गमनागमन करती हुई मुझे दीखती हैं फिर पूर्वकी भांति जल्दीसे आलिङ्गनादि क्यों नहीं देतीं ! ॥ ६ ॥

क्षम्यतामपरं कदापि तवेदृशं न करोमि।
देहि सुन्दरि दर्शनं मम मन्मथेन दुनोमि ॥ हरि० ॥७॥

हे सुन्दरि ! क्षमा कीजिये, तथा दर्शन दीजिये, अब ऐसा अपराध कभी न करूँगा, मैं काम-पीडित हो रहा हूँ ॥ ७ ॥

वर्णितं जयदेवकेन हरेरिदं प्रणतेन।
किन्दुबिल्वसमुद्रसम्भवरोहिणीरमणेन ॥ हरिहरि० ॥८॥

'किन्दुबिल्व' रूपी समुद्रमें चन्द्रके समान हरिको प्रणाम करनेवाले जयदेव कविने यह वर्णन किया ॥ ८ ॥

भ्रूपल्लवं धनुरपाङ्गतरङ्गितानि
बाणा गुणाः श्रवणपालिरिति स्मरेण।
तस्यामनङ्गजयजङ्गमदेवताया-
मन्त्राणि निर्जितजगन्ति किमर्पितानि ॥ १ ॥

हे कामदेव ! आपने भृकुटीरूप धनुष, चञ्चल कटाक्षरूपी बाण, कर्णपालिरूपी धनुषकी डोरी आदि-आदि अपने शस्त्रोंको जिनसे संसार वशमें होता है चलती-फिरती जयलक्ष्मी रूपी राधाको क्यों दिये ? [ सम्भव है इसलिए कि वह मेरे ऊपर प्रहार करे, इति ध्वन्यते ] ॥ १ ॥

हृदि बिलसतेहारो नायं भुजङ्गमनायकः
कुवलयदलश्रेणी कण्ठे न सा गरलद्युतिः।
मलयजरजो नेदं भस्म प्रियारहिते मयि
प्रहर न हरभ्रान्त्यानङ्ग क्रुद्धा किमु धावसि ॥ २ ॥

हे कामदेव ! हमारे हृदयपर यह माला है, इसे सर्पराज न समझिये, हमारे

गलेमें यह कमलदलोंकी पांति है, इसे विषकी चमक न समझिये, हमारे शरीरमें यह चन्दनका लेप है, इसे आप भस्म न समझिये अर्थात् हम प्रिया विरही हैं अतः उक्त वस्तुएं तापहरणार्थ हैं इनकी भ्रान्तिसे मुझे शिवजी समझकर मेरे ऊपर वृथा प्रहार न करिये ॥ २ ॥

पाणौ मा कुरु चूतसायकममुं मा चापमारोपय
क्रीडानिर्जितविश्वमूर्च्छितजनाघातेन किं पौरुषम् ।
तस्या एव मृगीदृशो मनसिजप्रेङ्खत्कटाक्षानिल-
ज्वालाजर्जरितं मनागपि मनो नाद्यापि सन्धुक्षते ॥३॥

हे कामदेव ! आप इन आमोंके मञ्जरीरूपी बाणोंको हाथोंमें न धारण कीजिये, क्योंकि-हे विश्वको खेल-खेलसे जीतनेवाले मनोभव ! मूर्च्छितपुरुष को जीतनेसे क्या ? देखिये, उस मृगनयनी राधाके कामबाणरूपी कटाक्षाग्निकी ज्वालासे जला हुआ मेरा चित्त अभीतक स्वस्थ नहीं हुआ । [ मेरेको मारनेसे क्या लाभ ? ] ॥ ३ ॥

भ्रूचापे निहितः कटाक्षविशिखो निर्मातु मर्मव्यथा
श्यामात्मा कुटिलः करोतु कबरीभारोऽपि मारोद्यमम् ।
मोहं तावदयं च तन्वि ! तनुतां बिम्बाधरो रागवा-
न्सद्वृत्तस्तनमण्डलस्तव कथं प्राणैर्मम क्रीडति ॥ ४ ॥

हे कृशाङ्गिणि ! आपके भृकुटीरूपी धनुषपर नियोजित बाण मेरे घावोंपर (मर्मोंपर) लगे तो लगे, यह श्याम तथा कुटिल केशकलाप कामदेवको उद्दीपित करे तो करे, कुन्दरूके समान अधरोष्ठ राग बढावे तो बढावे, किन्तु, सुन्दर तथा गोल-गोल ( सद्वृत्त ) आपके ये कुच क्यों प्राणोंको दह रहे हैं ? ॥ ४ ॥

तानि स्पर्शसुखानि ते च तरलास्निग्धा दृशोर्विभ्रमा-
स्तद्वक्त्राम्बुजसौरभं स च सुधास्पन्दी गिरां वाक्रमा ।
सा बिम्बाधरमाधुरीति विषयासङ्गेऽपि मन्मानसं
तस्यां लग्नसमाधि हन्त विरहव्याधिः कथं वर्त्तते ॥ ५ ॥

वही स्पर्श सुख है, वे ही चञ्चल तथा स्निग्ध कटाक्षोंका आनन्द, वही मुखः-

रविन्दकी सुगन्ध है, वही सुधामयी वाणी, वही कुन्दरूके समान अधरकी मधुरता इन विषयोंके रहते हुए भी मेरा मन उसी राधाकी ओर लगा है, खेद है कि विरहव्यथा क्यों बढ रही हैं ॥ ५ ॥

तिर्यक्कण्ठविलोलमौलितरलोत्तंसस्य वंशोच्चर-
द्गीतस्थानकृतावधानललनालक्षैर्न संलक्षिताः ।
संमुग्धं मधुसूदनस्य मधुरे राधामुखेन्दौ मृदु-
स्पन्दं पल्लविताश्चिरं दधतु वः क्षेमं कटाक्षोर्मयः ॥ ६ ॥

इति श्रीगीतगोविन्दकाव्ये 'मुग्धमधुसूदनो नाम तृतीयः सर्गः ।

बजती हुई बांसुरीके ललितपदोंके श्रवणसे अन्याङ्गनाओं द्वारा अलक्षित राधाके सुन्दर मुखरूपी चन्द्रमें अप्रकट भावसे धीरे-धीरे चलकर बढ़ाई हुई गरदनको तिरछी करनेसे चञ्चलायमान हो गये मुकुट एवं किरीटमणि जिनके ऐसे कृष्णकी कटाक्षावलि आपको आनन्दकारिणी हो ॥ ६ ॥

इस प्रकारसे गीतगोविन्द काव्यके मुग्धमधुसूदन सर्गकी "इन्दु" नामक हिन्दी टीका समाप्त हुई !

---

## चतुर्थसर्गः ।

यमुनातीरवानीरकुञ्जे मन्दमास्थितम् ।
प्राह प्रेमभरोद्भ्रान्तं माधवं राधिकासखी ॥ १ ॥

यमुनातटकी वेतसलता कुञ्जमें उदास बैठे हुए तथा प्रेम-बाहुल्यसे उद्विग्न चित्तवाले माधवसे राधिका-सखी कहने लगी ॥ १ ॥

कर्णाटकरागे एकतालीताले अष्टपदी ॥ ८ ॥

निन्दति चन्दनमिन्दुकिरणमनुविन्दति खेदमधीरम् ।
व्यालनिलयमिलनेन गरलमिव कलयति मलयसमीरम् ।
सा विरहे तव दीना ।
माधवमनसिजविशिखभयादिव भावनया त्वयि लीना ॥ ध्रु० १ ॥

हे माधव ! कामदेवके बाणोंके भयसे वह राधा, मानिये, आपमें लीन हो-
गयी है। [illegible] आसक्त हो गयी है। [illegible] निन्दा करती है,

चन्द्रकिरणको अधीर होकर कष्टकारिणी समझती है, मलयसमीरको सर्पगृहसे आनेके कारण विषके समान मानती है ॥ १ ॥

अविरलनिपतितमदनशरादिव भवदवनाय विशालम् ।
स्वहृदयमर्मणि वर्म करोति सजलनलिनदलजालम् ॥सा० २॥

हे माधव ! वह राधा लगातार लगनेवाले कामबाणोंके भयसे अपने हृदयमें बसनेवाले आपकी रक्षाके लिए अपने हृदयके मर्मस्थलपर जलसे भिगाये कमल पत्रके वर्म ( बख्तर ) को धारण करती है ॥ २ ॥

कुसुमविशिखशरतल्पमनल्पविलासकलाकमनीयम् ।
व्रतमिव तव परिरम्भसुखाय करोति कुसुमशयनीयम् ॥सा० ३॥

हे माधव ! वह राधा विविध भाँतिकी बिलासकलासे परिपूर्ण कामदेवके तीखे-तीखे बाणोंकी शय्यापर सोती है तथा ( कभी ) पुष्प शय्यापर भी सोती है आपके आलिङ्गनसुखके निमित्त वह व्रत कर रही ॥ ३ ॥

वहति च चलितविलोचनजलधरमाननकमलमुदारम् ।
विधुमिव विकटविधुन्तुददन्तदलनगलितमिवधारम् ॥सा० ४॥

हे माधव ! वह राधा भयङ्कर राहुके दाँतोंसे दलित चन्द्रसे बहती हुई सुधा-धाराके समान, निरन्तर बहते हुए अश्रुजलसे पूर्ण नेत्रवाले मुखारविन्दको धारण करती है ॥ ४ ॥

विलिखति रहसि कुरङ्गमदेन भवन्तमसमशरभूतम् ।
प्रणमति मकरमधो विनिधाय करे च शरं नवचूतम् ॥सा० ५॥

हे मायापते ! वह राधा कामदेवकी आकृतिके समान आपकी आकृति एकान्तमें कस्तूरीसे लिखती है तथा आकृतिके नीचे एक मगरकी आकृति रचती है एवं आपकी आकृतिके हाथमें आमका बाण लिखती है, फिर उस आकृतिको प्रणाम करती ॥ ५ ॥

प्रतिपदमिदमपि निगदति माधव ! तव चरणे पतिताहम् ।
त्वयि विमुखे मयि सपदि सुधानिधिरपि तनुते तनुदाहम् ॥सा० ६॥

 ... कहती है

हे माधव ! मैं आपके पैरों पड़ती हूँ, आपके वियोगसे अमृतनिधि चन्द्र भी मुझे दाह देता है ॥ ६ ॥

ध्यानलयेन पुरः परिकल्प्य भवन्तमतीव दुरापम् ।
विलपति हसति विषीदति रोदिति चञ्चति मुञ्चति तापम् ॥सा०७॥

हे माधव ! व्रतादिसे प्राप्त होनेवाले ! वह राधा, चित्तमें आपका ध्यान करके आपकी मूर्त्तिकी कल्पना अपने सम्मुख करके कभी रोती है, कभी दुःखी होती है, कभी विलखती है, कभी सन्ताप करना त्याग देती है ॥ ७ ॥

श्रीजयदेवभणितमिदमधिकं यदि मनसा नटनीयम् ।
हरिविरहाकुलवल्लवयुवतिसखीवचनं पठनीयम् ॥सा०८॥

जयदेव कविके काव्यका यदि अधिक आनन्द लेना हो तो कृष्ण विरहिणी राधाकी सखीके वचनोंको पढिये ॥ ८ ॥

आवासो विपिनायते प्रियसखी मालापि जालायते
तापोऽपि श्वसितेन दावदहनज्वालाकलापायते ।
सापि त्वद्विरहेण हन्त ! हरिणीरूपायते हा कथं
कन्दर्पोऽपि यमायते विरचयञ्छार्दूलविक्रीडितम्(१) ॥ १ ॥

हे कृष्ण ! आपकी विरह-व्यथासे राधाको भवन, वनके समान, प्रिय सखियां जालके समान, श्वांस, दावानलके समान सन्तापती है,अ त्यन्त खेद है कि वह राधा आपके विरहमें हरिणीके समान प्रतीत होती है, कामदेव भी यमराज रूपी शेरके समान दह रहा है, किं बहुना, अब उसकी अन्तावस्था है॥ १॥

देशाख्य एकतालीताले अष्टपदी ॥ ९ ॥

स्तनविनिहितमपि हारमुदारम् ।
सा मनुते कृशतनुरतिभारम् ॥
राधिकाविरहे तव केशव माधव वामन विष्णो ॥ ध्रु० १ ॥

---

(१) शार्दूलविक्रीडित छन्दका लक्षण भी है—
यथा—सूर्याश्वैर्मसजस्तताः सगुरवः शार्दूलविक्रीडितम् ।

हे कृष्ण ! वह कृशशरीरधारणी राधा, आपके वियोगसे अपने उरोजों पर पहिरे हुए हारको भी अत्यन्त भारस्वरूप मानती है ॥ १ ॥

सरसमसृणमपि मलयजपङ्कम् ।

पश्यति विषमिव वपुषि सशङ्कम् ॥ राधिका० ॥ २ ॥

हे गोविन्द ! वह राधा आपकी वियोगरूपी व्यथासे सरस तथा चिकने चन्दनको भी विषके समान मानती है, तथा सशंक अपने शरीरका अवलोकन करती है ॥ २ ॥

श्वसितपवनमनुपमपरिणाहम् ।

मदनदहनमिव वहति सदाहम् ॥ राधिका० ३ ॥

हे कृष्ण ! वह राधा आपके वियोगमें दीर्घ निश्वासोंको गरम कामाग्निके समान धारण करती है ॥ ३ ।

दिशि दिशि किरति सजलकणजालम् ।

नयननलिनमिव विगलितनालम् ॥ राधिका० ॥ ४ ॥

हे मुरारे ! राधा प्रत्येक दिशाओंमें अश्रुपात करती है, जैसे जल बिन्दुओं से परिपूर्ण कमलदण्डसे जल गिरता है ॥ ४ ॥

नयनविषयमपि किसलयतल्पम् ।

कलयति विहितहुताशविकल्पम् ॥ राधिका० ॥ ५ ॥

हे वासुदेव ! आपके वियोगमें राधा नेत्रोंके सम्मुख बिछी हुई किसलयों की शय्याको अग्निशय्या समझती है ॥ ५ ॥

त्यजति न पाणितलेन कपोलम् ।

बालशशिनमिव सायमलोलम् ॥ राधिका० ॥ ६ ॥

हे मुरारे ! सन्ध्यासमय राधा, आपके विरहमें गालोंपर हथेली धरे हुए निश्चल बालचन्द्रके समान दीखती है ॥ ६ ॥

हरिरिति हरिरिति जपति सकामम् ।

विरहविहितमरणेव निकामम् ॥ राधिका० ॥ ७ ॥

हे नाथ ! आपके वियोगसे राधा मृत्युतुल्य प्राणीके समान "हरिः, हरिः" जपती है ॥ ७ ॥

श्रीजयदेवभणितमिति गीतम् ।
सुखयतु केशवपदमुपनीतम् ॥ राधिका० ॥ ८ ॥

भगवान् कृष्णके चरणोंमें समर्पित जयदेवकविका यह गीत सुखद होवे ॥८॥

सा रोमाञ्चति सीत्करोति विलपत्युत्कम्पते ताम्यति
ध्यायत्युद्भ्रमति प्रमीलति पतत्युद्याति मूर्च्छत्यपि ।
एतावत्यतनुज्वरे वरतनुर्जीवेन्न किं ते रसा-
त्स्वर्वैद्यप्रतिम प्रसीदसि यदि त्यक्तोन्यथा हस्तकः ॥ १ ॥

हे (१)स्वर्गके वैद्यतुल्य, कृष्ण ! वह राधा रोमाञ्चित होती है, शी—शी करती है, बिलखती है; कांपती है, गिरती है; ध्यान करती है, मूर्च्छित होती है, खड़ी होती है, उसे उक्त रीतिसे कामज्वर सता रहा है, सो आपके ( २ ) रस ( श्रृङ्गारादिके उपचारसे ) क्या नहीं जी सकती ! अपितु, जी सकती है। अन्यथा, वह अधुना जो हाथ आदिके संकेतसे बोलती है वह भी बन्द हो जायगा । अर्थात्-आपके बिना वह मर जायगी ॥ १ ॥

स्मरातुरां दैवतवैद्यहृद्य त्वदङ्गसङ्गामृतमात्रसाध्याम् ।
विमुक्तबाधां कुरुषे न राधा-मुपेन्द्रवज्रा( ३ )दपि दारुणोसि ॥२॥

हे देववैद्यके सदृश श्रेष्ठ ! कृष्ण ! उस राधाका रोग केवल आपके आलिङ्गनरूपी अमृतसे हो अच्छा हो सकता है, अतः यदि आप राधाको रोग विमुक्त न करेंगे तो हे उपेन्द्र ! आप वज्रसे भी अधिक कठोर हैं ॥ २ ॥

कन्दर्पज्वरसञ्ज्वराकुलतनोराश्चर्यमस्याश्चिरं
चेतश्चन्दनचन्द्रमः कमलिनीचिन्तासु सन्ताम्यति ।
किन्तु क्षान्तिवशेन शीतलतनुं त्वामेकमेव प्रियं
ध्यायन्ती रहसि स्थिता कथमपि क्षीणा क्षणं प्राणिति ॥३॥

( १ ) स्वर्वैद्य = अश्विनीकुमार ।
( २ ) रस शब्दसे एक पक्षमें श्रृङ्गार रस अपर पक्षमें सुवर्णादिरस जानना चाहिये, क्योंकि इस श्लोकके दो अर्थ होते हैं ।
( ३ ) उपेन्द्रवज्रा छन्दका लक्षण भी है। यथा—उपेन्द्रवज्रा जतजास्ततोगौ ।

कामज्वरसे व्याकुल तथा कृशशरीरवाली राधाका चित्त चन्दन, चन्द्र कमलिनीका ध्यान करते ही सन्तप्त हो उठता है, यह आश्चर्य है कि शीतल देहवाले एक आप हीका ध्यान करती हुई वह एकान्तमें ग्लानिके वशीभू येन-केन प्रकारेण जीवित है ॥ ३ ॥

क्षणमपि विरहः पुरा न सेहे
नयननिमीलनखिन्नया यया ते ।
श्वसिति कथमसौ रसालशाखां
चिरविरहेण विलोक्य पुष्पिताग्राम्(१) ॥ ४ ॥

हे माधव ! भला जिस राधाको पूर्वमें, नेत्रोंके पलक गिरनेमें भी आपके दर्शनकी बाधासे, खेद होता था वही राधा प्रफुल्लित आमकी शाखाओंको देखकर कैसे सो सकती हैं ॥ ४ ॥

वृष्टिव्याकुलगोकुलावनवशादुद्धृत्य गोवर्धनं
बिभ्रद्बल्लवसुन्दरीभिरधिकानन्दाच्चिरं चुम्बितः ।
कन्दर्पेण तदर्पिताधरतटीसिन्दूरमुद्राङ्कितो
बाहुर्गोपतनोस्तनोतु भवतां श्रेयांसि कंसद्विषः ॥ ५ ॥

इति श्रीगीतगोविन्दकाव्ये स्निग्धमाधवोनाम चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

वर्षासे व्याकुल गोकुलकी रक्षाके लिए गोवर्द्धन पर्वतको उखाड़कर धारण करनेवाले, व्रजवनिताओं द्वारा सुखपूर्वक दीर्घ कालतक चुम्बित अभि मानके वशीभूत होकर (२) गोपियों द्वारा रखे गये अधरोंसे लाल-लाल मुद्रा भुजाओंके ऊपर धारनेवाले, गोपवेषधारी कंसके शत्रु भगवान् कृष्ण आपका कल्याण करें ॥ ५ ॥

इस प्रकारसे गीतगोविन्द काव्यके स्निग्धमाधव नामक सर्गकी "इन्दु" नामक हिन्दी टीका समाप्त हुई ।

---

(१) पुष्पिताग्रा छन्दका लक्षण है। यथा-अयुजिनयुगरेफतो यकारो युजि च न जौ जरगाश्च पुष्पिताग्रा ।

(२) गोपाङ्गनाओंने अपने लाल-लाल अधरोंकी कृष्णकी भुजाओंपर धरा वही लाल रंग मानो, उन भुजाओंपर मुद्रित हो गया ।

## पञ्चमसर्गः ।

अहमिह निवसामि याहि राधामनुनय मद्वचनेन चानयेथाः ।
इतिमधुरिपुणासखीनियुक्तास्वयमिदमेत्य पुनर्जगादराधाम् ॥ १ ॥

श्रीकृष्णने राधाकी सखीसे कहा—"मैं इसी कुञ्जमें बैठा हूं, आप जाकर मेरी ओरसे राधाको समझा-बुझाकर यहांपर ले आइये" वह सखी राधासे जाकर पुनः बोली ॥ १ ॥

देशवराडीरागे रूपकताले अष्टपदी ॥ १० ॥

वहति मलयसमीरे मदनमुपनिधाय ।
स्फुटति कुसुमनिकरे विरहिहृदयदलनाय ॥
तव विरहे वनमाली सखि सीदति ॥ ध्रु० ॥ १ ॥

हे राधे ! कामदेवको सहायक मानकर मलय पवनके बहनेसे तथा विरही-जनोंके हृदयोंके विदीर्णार्थ पुष्पोंके कलियोंके खिलनेसे, हे सखी ! आपके विरहसे वनमाली पीडित हैं ॥ १ ॥

दहति शिशिरमयूखे मरणमनुकरोति ।
पतति मदनविशिखे विलपति विकलतरोति ॥तव विर०॥२॥

हे सखि ! जिससमय चन्द्र निज किरणोंसे श्रीकृष्णको जलाता है, उस समय श्रीकृष्ण मृत्यु व्यथाके सहश पीडित होते हैं तथा जब कामदेव उनके ऊपर तीक्ष्ण-तीक्ष्ण बाण चलाता है तब वे श्रीकृष्ण अत्यन्त दुःखसे विलाप करते हैं ॥ २ ॥

ध्वनति मधुपसमूहे श्रवणमपि दधाति ।
मनसि चलितविरहे निशि निशि रुजमुपयाति॥ तव० ३ ॥

हे प्रिये ! कानोंमें भ्रमरध्वनि न सुनायी दे इसलिए वे श्रीकृष्ण भ्रमरोंके झङ्कारके समय अपने कानोंको बन्द कर लेते हैं तथा जब आपका स्मरण आ-जाता है तब उन्हें अत्यन्त कष्ट होता है हृदयमें आपके स्मरणसे उनकी व्यथा प्रति रात्रि बढ़ती जा रही है ॥ ३ ॥

वसति विपिनविताने त्यजति ललितधाम ।
लुठति धरणिशयने बहु विलपति तव नाम ॥ तव० ॥ ४ ॥

हे सखि! आपके विरहमें श्रीकृष्ण घोर जङ्गलमें रहते हैं, पृथिवीपर ही सोते हैं, किं बहुना, आपका नाम लेकर बार-बार विलाप करते हैं ॥ ४ ॥

रणति पिकसमुदाये प्रतिदिशमनुयाति ।
हसति मनुजनिचये विरहमपलपति नेति ॥ तव० ॥ ५ ॥

हे प्रियतमे! कोयलोंका झुण्ड जब "कुहू-कुहू" करके बोलता है तब श्रीकृष्ण चारों ओर उन्मत्तकी भांति दौड़ते हैं, इसपर लोग उनपर हंसते हैं, तब श्रीकृष्ण विरहको फटकार कर कहते है "तुम मत हो" ॥ ५ ॥

स्फुरति कलरवरावे स्मरति भणितमेव ।
तव रतिसुखविभवे बहुगणयति गुणमतीव ॥ तव० ६ ॥

हे सखि! पक्षियोंके कलरवको श्रवण करके कृष्णको सुरीली वाणीका स्मरण आ जाता है तथा आपकी रतिके आनन्दका अनुभव होते ही वे रतिसुखका बार-बार गुण गान करते हैं ॥ ६ ॥

त्वदभिधशुभदमासं वदति नरि शृणोति ।
तमपि जपति सरसं परयुवतिषु न रतिमुपैति ॥ तव० ७ ॥

हे प्रिये! जब कोई प्राणी आपके नामके तुल्य शुभ दायक वैशाख मासका नाम लेता है तब कृष्ण उसे अति प्रेमके साथ सुनते तथा जपते हैं, एवं अन्य युवतियोंके साथ रति भी नहीं करते ॥ ७ ॥

भणति कविजयदेवे विरहिविलसितेन ।
मनसि रभसविभवे हरिरुदयतु सुकृतेन ॥ तव० ८ ॥

इस प्रकारसे श्रीकृष्ण-वियोगरूपी वर्णनसे आनन्दयुक्त जयदेवकविके अन्तःकरणमें पुण्यसे श्रीकृष्ण प्रकटें ॥ ८ ॥

पूर्वं यत्र समं त्वया रतिपतेरासादिताः सिद्धय-
स्तस्मिन्नेव निकुञ्जमन्मथमहातीर्थे पुनर्माधवः ।
ध्यायंस्त्वामनिशं जपन्नपि तवैवालापमन्त्रावलिं
भूयस्त्वत्कुचकुम्भनिर्भरपरीरम्भामृतं वाञ्छति ॥ १ ॥

हे राधे! जिस निकुञ्जमें प्रथम आपके साथ कृष्णने कामदेवकी सिद्धियां

प्राप्त की थीं अधुनापि, कृष्ण उसी कुञ्जमें, कामदेवके महातीर्थमें बैठकर दिन-रात आपका ही चिन्तन करते हुए, आपके नामाक्षरों युक्त मन्त्रोंको जापते हैं, तथा आपके कलशतुल्य स्तनोंके निर्भर आलिङ्गनरूपी अमृतकी अभिलाषा करते हैं॥१॥

गुर्जररागेण एकतालीताले अष्टपदी ॥ ११ ॥

रतिसुखसारे गतमभिसारे मदनमनोहरवेषम् ।
न कुरु नितम्बिनि गमनविलम्बनमनुसर तं हृदयेशम् ।
धीरसमीरे यमुनातीरे वसति वने वनमाली ।
गोपीपीनपयोधरमर्दनचञ्चलकरयुगशाली ॥ ध्रु० १ ॥

हे प्रिये। गोपियोंके उन्नतस्तनोंके मलनेमें चञ्चल हाथोंको धारण करनेवाले वनमाली, यमुनाकिनारे जहांपर मन्द-मन्द पवन चल रहा है, बैठे हैं। अतः हे नितम्बिनि। रतिके तत्त्ववेत्ता (१) अभिसारमें बैठे हुए, कामदेवके सदृश सुन्दर छविधारी अपने प्राणेशके सन्निकट चलनेमें विलम्ब न करिये ॥ १ ॥

नामसमेतं कृतसङ्केतं वादयते मृदुवेणुम् ।
बहुमनुते ननु ते तनुसङ्गतपवनचलितमपि रेणुम् ॥ धी० २ ॥

हे सखि। आपके नामका संकेत कर करके श्रीकृष्ण मधुर ध्वनिसे वंशी बजा रहे हैं तथा आपके शरीरसे स्पर्श होकर जो धूलि, पवन द्वारा उड़कर उन तक पहुंच रही है, उसके स्पर्शसे अपनेको कृत-कृत्य समझते हैं ॥ २ ॥

पतति पतत्रे विचलति पत्रे शङ्कितभवदुपयानम् ।
रचयति शयनं सचकितनयनं पश्यति तव पन्थानम् ॥धी०३॥

हे राधे! पक्षियोंके उड़नेके शब्दसे तथा पत्तोंकी खड़-खड़ाहटसे श्रीकृष्ण आपके आगमनकी सम्भावनासे चौकन्ने होकर आगमन मार्गको देखने लगते हैं तथा शय्या सजाने लगते है ॥ ३ ॥

मुखरमधीरं त्यज मञ्जीरं रिपुमिव केलिसुलोलम् ।
चल सखि कुञ्जं सतिमिरपुञ्जं शीलय नीलनिचोलम् ॥धी०४॥

हे प्रिये! बहुत बजनेवाले अधीर एव रतिके समय चचल इन नूपुरोंको

---

(१) अभिसार=सङ्केतस्थान।

यहीं छोड़कर नीले वस्त्रधारण करके घोर अन्धकारवाली कुञ्जमें चलिये ॥४॥

उरसि मुरारेरुपहितहारे घन इव तरलबलाके ।
तडिदिव पीते रतिविपरीते राजसि सुकृतविपाके ॥ धीर० ५ ॥

हे पीतवर्णे ! राधे । मेघोंमें बकुल पङ्क्तिके समान मालाओंसे सुसज्जित तथा पुण्यसे उपलब्ध श्रीकृष्णके वक्षः स्थलपर विपरीत ( १ ) रति करके बिजलीकी तरह चमकिये ॥ ५ ॥

विगलितवसनं परिहृतरशनं घटय जघनमपिधानम् ।
किसलयशयने पङ्कजनयने निधिमिव हर्षनिधानम् ॥धी० ६॥

हे प्रिये ! इन कोमल-कोमल पत्तोंके ऊपर सोनेवाले, कमलनयन श्रीकृष्णके ऊपर वस्त्र तथा करधनी उतारकर निधिके समान आनन्दप्रदा जांघको मिलाइये॥६

हरिरभिमानी रजनिरिदानीमियमपि याति विरामम् ।
कुरु मम वचनं सत्वररचनं पूरय मधुरिपुकामम् ॥धी० ७॥

हे राधे ! हरि अभिमानी हैं तथा यह रात भी व्यतीत हुई जा रही है, अतः मेरे समझाये हुए वचनोंको शीघ्र कीजिये तथा श्रीकृष्णकी कामेच्छा पूरी करिये ॥७

श्रीजयदेवे कृतहरिसेवे भणति परमरमणीयम् ।
प्रमुदितहृदयं हरिमतिसदयं नमत सुकृतकमनीयम् ॥धी० ८॥

श्रीकृष्णसेवी जयदेव कविकृत इस गीतके परमादरणीय, दयालु, सुन्दर एवं प्रसन्नचित्तवाले, कृष्णको प्रणाम है ॥ ८ ॥

विकिरति मुहुः श्वासानाशाः पुरो मुहुरीक्षते
प्रविशति मुहुः कुञ्जं गुञ्जन् मुहुर्बहु ताम्यति ।
रचयति मुहुः शय्यां पर्याकुलं मुहुरीक्षते
मदनकदनक्लान्तः कान्ते प्रियस्तव वर्तते ॥ १ ॥

हे प्रिये ! कामपीड़ित आपके प्रिय बेर-बेर सासें लेते हैं पुनः पुनः दिशाओं की ओर अवलोकन करते हैं, बार-बार कुञ्जमें आते-जाते हैं, भूयो-भूयः शय्याकी

( १ ) विपरीतरति=स्त्रीपुरुषके ऊपर होती है ।

रचना करते हैं तथा अधीरतासे इतस्ततः देखते हैं ॥ १ ॥

त्वद्वाक्येन समं समग्रमधुना तिग्मांशुरस्तङ्गतो
गोविन्दस्य मनोरथेन च समं प्राप्तं तमः सान्द्रताम् ।
कोकानां करुणस्वरेण सदृशी दीर्घा मदभ्यर्थना
तन्मुग्धे विफलं विलम्बनमसौ रम्योऽभिसारक्षणः ॥ २ ॥

हे राधे ! आपके वचनोंके साथ ही देखिये, समग्र सूर्य भी अस्त हो गया, कृष्णके मनोरथके साथ-साथ यह अन्धेरा भी प्रगाढ़ हो गया, चकवा-चकवीके करुण विलापके समान मेरी लम्बी प्रार्थना भी समाप्त हो गयी, अब शीघ्र चलिये, देर न करिये क्योंकि छिपकर चलनेका यही समय है ॥ २ ॥

आश्लेषादनु चुम्बनादनु नखोल्लेखादनुस्वान्तजा-
प्रोद्बोधादनु सम्भ्रमादनु रतारम्भादनु प्रीतयोः ।
अन्यार्थं गतयोर्भ्रमान्मिलितयोः सम्भाषणैर्जानतो-
र्दम्पत्योर्निशि को न को न तमसि व्रीडाविमिश्रो रसः॥३॥

हे सखि ! स्त्री तथा पुरुषके बताये हुए परस्पर सङ्केतस्थानमें अन्धेरेमें मिलनेमें एक दूसरेको पहिचान न सकनेके कारण वर्तालापसे ही अन्योन्यका बोध होता है बोध होनेपर आलिङ्गन, चुम्बन, कुचमर्दन ( कुचोंको जोरसे मलनेसे उन पर नखक्षत, पड़ जाते हैं ) नखक्षत,कामोद्दीप्ति तत्पश्चात् रतिका आरम्भ होता हैं, ऐसे समय दोनों लज्जावान् प्रेमी-प्रेमिकाको कौनसे सुख नहीं मिलते ॥ ३ ॥

सभयचकितं विन्यस्यन्तीं तिमिरे पथि
प्रतितरुमुहुः स्थित्वा मन्दं पदानि वितन्वतीम् ।
कथमपि रहःप्राप्तामङ्गैरनङ्गतरङ्गिभिः
सुमुखि सुभगः पश्यन् स त्वामुपैतु कृतार्थताम् ॥ ४ ॥

हे सखि ! अन्धेरेके कारण भयसे चारों ओर देखनेवाली वृक्षोंके नीचे बार-बार ठहर-ठहरकर धीरे-धीरे पैरोंको बढ़ानेवाली, जिसकी देह भरमें कामदेव व्याप्त हो रहा है ऐसी आपको सङ्केत स्थलमें पाकर सौभाग्यशाली श्रीकृष्ण कृतकृत्य होवें ॥ ४ ॥

राधामुग्धमुखारविन्दमधुपस्त्रैलोक्यमौलिस्थली
नेपथ्योचितनीलरत्नमवनीभारावतारक्षमः ।
स्वच्छन्दं व्रजसुन्दरीजनमनस्तोषप्रदोषश्चिरं
कंसध्वंसनधूमकेतुरवतु त्वां देवकीनन्दनः ॥ ८ ॥

इति श्रीगीतगोविन्द अभिसारिकावर्णने साकांक्षपुण्डरीकाक्षो
नाम पञ्चमः सर्गः ॥ ५ ॥

राधाके सुन्दर मुखरूपी कमलके मधुपरूप, तीनों लोकोंके मुकुट स्वरूप वेषरचनार्थ नीलमणिके समान, पृथ्वीका बोझ हलका करनेवाले, व्रजाङ्गनाओं के चित्तको प्रमुदित करनेके लिए प्रदोषरूप, कंसके विनाश करनेमें धूमकेतु तारे के समान देवकीनन्दन आपका कल्याण करें ॥ ५ ॥

इस प्रकारसे गीतगोविन्द काव्यके साकाङ्क्षपुण्डरीकाक्षनामक पञ्चम सर्गकी "इन्दु" टीका समाप्त हुई ॥

---

## षष्ठः सर्गः ।

अथ तां गन्तुमशक्तां चिरमनुरक्तां लतागृहे दृष्ट्वा ।
तच्चरितं गोविन्दे मनसिजमन्दे सखी प्राह ॥ १ ॥

अनन्तर गमन करनेमें असमर्थ तथा बहुकालसे अनुरागिणी राधाको लता गृहमें देखकर कामदेवसे व्याकुल श्रीकृष्णसे एक सखीने राधा चरित कहा ॥ १ ॥

गुणकरीरागेण रूपकताले अष्टपदी ॥ १२ ॥

पश्यति दिशि दिशि रहसि भवन्तम् ।
त्वदधरमधुरमधूनि पिबन्तम् ।
नाथ हरे जय नाथहरे सीदति राधा वासगृहे ॥ ध्रु० ॥१॥

हे नाथ ! आपके अधर-रूपी मधुर मधुको पीती हुई एकान्तमें बैठी हुई राधा प्रति दिशाओंको देख रही हैं । हे नाथ, हरे ! हे नाथ, हरे ! आपकी जय हो । राधा वासगृहमें ग्लान हो रही हैं ॥ १ ॥

त्वदभिसरणरभसेन वलन्ती ।

पतति पदानि कियन्ति चलन्ती ॥ नाथ हरे० ॥ २ ॥

हे कृष्ण ! राधा ज्योंही वेगसे आपके समीप आने लगती हैं त्योंही दो-चार कदम चलकर गिर पड़ती हैं ॥ २ ॥

[ इस श्लोकमें राधाकी क्षीणता दिखायी है कि वह आपके वियोगमें कितनी निर्बल होगयी हैं ॥ २ ॥ ]

विहितविशदबिसकिसलयवलया ।

जीवति परमिह तव रतिकलया ॥ नाथ हरे० ॥ ३ ॥

हे हरे ! कमलनाल तथा नवीन पल्लवके कड़े पहिरनेवाली वह राधा आपकी रतिके लालचसे जीवित हैं ॥ ३ ॥

मुहुरवलोकितमण्डनलीला ।

मधुरिपुरहमिति भावनशीला ॥ नाथ हरे० ॥ ४ ॥

हे नाथ ! एकान्तमें वह राधा (अत्यन्त अनुरागसे आपहीके रूप [कुण्डलादि] धारणकर) पुनः पुनः अपने आभूषणोंकी शोभा निहारती हैं तथा "मैं ही कृष्ण हूँ" इस प्रकारकी भावना करती हैं ॥ ४ ॥

त्वरितमुपैति न कथमभिसारम् ।

हरिरिति वदति सखीमनुवारम् ॥ नाथ हरे० ॥ ५ ॥

हे भगवन् ! वह राधा अपनी सखीसे बार-बार कहती हैं "हरि अभिसार ( सङ्केतस्थान ) में जल्दीसे क्यों नहीं आये ? ॥ ५ ॥

श्लिष्यति चुम्बति जलधरकल्पम् ।

हरिरुपगत इति तिमिरमनल्पम् ॥ नाथ हरे० ॥ ७ ॥

हे मधुरिपो ! वह राधा मेघके समान प्रगाढ़ अन्धकारको देखकर आप ही ( कृष्णको ) आये हुए समझकर आलिङ्गन तथा चुम्बन करती हैं ॥ ६ ॥

भवति विलम्बिनि विगलितलज्जा ।

विलपति रोदिति वासकसज्जा ॥ नाथ हरे० ॥ ७ ॥

हे कंसरिपो ! आपके विलम्ब करनेसे (१)वासकसज्जाकी भांति राधा निर्लज्ज होकर रोती तथा विलखती हैं ॥ ७ ॥

श्रीजयदेवकवेरिदमुदितम् ।
रसिकजनं तनुतामतिमुदितम् ॥ नाथ हरे० ॥ ८ ॥

जयदेवकविकृत यह गीत रसज्ञोंको आनन्द दायक होवे ॥ ८ ॥

विपुलपुलकपालिः स्फीतसीत्कारमन्त-
र्जनितजडिमकाकुव्याकुलं व्याहरन्ती ।
तव कितव ? विधायामन्दकन्दर्पचिन्तां
रसजलधिनिमग्ना ध्यानलग्ना मृगाक्षी ॥ १ ॥

हे कितव ! वह मृगनयनी आपका ध्यान करनेवाली तथा शृङ्गारादि रस रूपी समुद्रमें डुबकी लगानेवाली राधा, कभी ( ध्यान करते समय ) अति हर्षके साथ रोमञ्चिता हो उठती हैं, कभी, शी-शी करती हैं, कभी जड़त्वके प्रादुर्भाव होनेसे वह व्याकुल होने लगती हैं ॥ १ ॥

अङ्गेष्वाभरणं करोति बहुशः पत्रेऽपि सञ्चारिणि
प्राप्तं त्वां परिशङ्कते वितनुते शय्यां चिरं ध्यायती ।
इत्याकल्पविकल्पतल्परचनासङ्कल्पलीलाशत-
व्यासक्तापि विना त्वया वरतनुर्नैषा निशां नेष्यति ॥२॥

हे कृष्ण ! पत्रोंतककी खड़-खड़ाहट सुनकर वे राधा अपने अङ्गोंमें आभूषणोंको पहिरने लगती हैं, ऐसा समझकर कि आप आ रहे हैं, वे शय्याको सजाने लगती हैं एवं ध्यानमग्न होकर अनेकों विचारोंको करने लगती हैं, परन्तु बिना आपके उसकी रात नहीं कटती ॥ २ ॥

किं विश्राम्यसि कृष्ण(२)भोगिभवने भाण्डीरभूमीरुहि

---

( १ ) पतिके आगमनसे शृङ्गारसहित तथा पतिके अनुपस्थितिमें शृङ्गारादि रहित स्त्रीको वासकसज्जा कहते हैं ।

( २ ) 'कृष्णभोगिभवने' पदसे यह श्लोक श्लिष्ट है इससे यह प्रतीति होती है कि उसी पेड़ के नीचे उन लोगोंका संकेतस्थल भी था ।

भ्रातर्यासि न दृष्टिगोचरमितः सानन्दनन्दास्पदम् ।
राधाया वचनं तदध्वगमुखान्नन्दान्तिके गोपतो
गोविन्दस्य जयन्ति सायमतिथिप्राशस्त्यगर्भा गिरः॥ ३॥
इति श्रीगीतगोविन्दे वासकसज्जावर्णने सोत्कण्ठधन्यवैकुण्ठो
नाम षष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥

हे पथिक ! इस भाण्डीर वृक्षके नीचे क्यों विश्राम करते हो ? यहांपर तो कृष्ण–सर्पका निवास स्थान है । क्या–भाई ? आपको नन्दबाबाका भवन नहीं दिखलायी पड़ता ? जहांपर कि सभी सुविधाएं उपलब्ध हैं । इस प्रकारसे राधा द्वारा कहे हुए वचनोंको पथिक–मुखसे श्रवणकर, नन्द बाबाके सम्मुख उन वचनोंको छिपानेवाले श्रीकृष्णने पथिकसे कहा–"आइये आपका स्वागत है" इत्यादि वचनोंको कहकर वह बात उड़ादी । श्रीकृष्णसे कथित वाणी जययुक्त हो ॥ २ ॥

इस प्रकारसे गीतगोविन्द काव्यके सोत्कण्ठवैकुण्ठनामक षष्ठ सर्गकी "इन्दु" टीकासमाप्त हुई ।

---

## सप्तमः सर्गः ।

अत्रान्तरे च कुलटाकुलवर्त्मपात-
सञ्जातपातक इव स्फुटलाञ्छनश्रीः ।
वृन्दावनान्तरमदीपयदंशुजालै-
र्दिक्सुन्दरीवदनचन्दनबिन्दुरिन्दुः ॥ १ ॥

इसी समय व्यभिचारिणी अङ्गनाओंके मार्गोंको रोकनेके पापसे मानों स्पष्ट कलङ्कित तथा पूर्वदिशारूपी महिलाके चन्दन–विन्दुके ( मण्डलाकारके ) सदृश, चन्द्रने अपनी किरणोंसे वृन्दावनको देदीप्यमान कर दिया ॥ १ ॥

प्रसरति शशधरबिम्बे विहितविलम्बे च माधवे विधुरा ।
विरचितविविधविलापं सा परितापं चकारोच्चैः ॥ २ ॥

चन्द्रमण्डलके फैलनेपर, श्रीकृष्णके आनेमें देरके कारण वह विरहिणी राधा,

अनेकों भांतिसे, जोर-जोरसे विलाप करने लगीं ॥ २ ॥

गौडमालवरागे यतिताले अष्टपदी ॥ १३ ॥

कथितसमयेऽपि हरिरहह न ययौ वनम् ।
मम विफलमेतदनुरूपमपि यौवनम् ॥
यामि हे(१)कमिह शरणं सखीजनवचनवञ्चिता ॥ध्रु०॥१॥

राधा कहती हैं—कथित समयपर भी कृष्ण, वनमें नहीं आये यह रमण योग्य ( रतिके लिए योग्य ) मेरा यौवन भी वृथा है, जब सखियोंसे ( जोकि सदा विश्वासपात्री होती हैं ) ही मैं ठगी गयी, तो फिर अब मैं किसकी शरणमें रहूँ, अतः जलाश्रय लेना ही उचित है। ( अर्थात्—डूब मरना चाहिये ) ॥ १ ॥

यदनुगमनाय निशि गहनमपि शीलितम् ।
तेन मम हृदयमिदमसमशरकीलितम् ॥ यामि० ॥ २ ॥

जिन श्रीकृष्णके लिए मैंने रात्रिमें गहन वनमें वास किया, उन्हीं कृष्णने मेरे हृदयमें कामदेवके असह्य वाणोंको वेध दिया ॥ २ ॥

मम मरणमेव वरमिति वितथकेतना ।
किमिति विषहामि विरहानलमचेतना ॥ यामि० ॥ ३ ॥

इस अरण्यमें अब मैं विरहकी आग कैसे सह सकती हूं, तथा यह ज्ञानशून्य शरीर भी वृथा है, इससे मृत्यु कहीं अच्छी है ॥ ३ ॥

मामहह विधुरयति मधुरमधुयामिनी ।
कापि हरिमनुभवति कृतसुकृतकामिनी ॥ यामि० ॥ ४ ॥

अत्यन्त खेद है कि वसन्तकी ये मनोहर रात्रियां मुझे क्लेशित कर रही हैं तथा ये ही रात्रियां अन्य गोपाङ्गनाको जो पुण्यात्मा हैं तथा श्रीकृष्णके साथ हैं उन्हे आनन्दित कर रही हैं ॥ ४ ॥

अहह कलयामि वलयादिमणिभूषणम् ।
हरिविरहदहनवहनेन बहुदूषणम् ॥ यामि० ॥ ५ ॥

---

( १ ) "कम्" का अर्थ जल भी होता है, जैसे—"पावके च मयूरे च मुखशीर्षजलेषु कम्" । इति विश्वः ।

हन्त ! श्रीकृष्णके बिना रत्न जड़े कङ्कण आदि दूषण तुल्य हैं । अर्थात्-बिना पतिके मेरा शृङ्गार वृथा है ॥ ५ ॥

कुसुमसुकुमारतनुमतनुशरलीलया ।
स्रगपि हृदि हन्ति मामपि विषमशीलया ॥ यामि० ॥ ६ ॥

कामदेवके बाणोंकी लीलासे फूलोंके सदृश मृदु गात्रवाली मुझे, स्वभावसे ही मृदु यह पुष्पमाला (१) अत्यन्त कण्टकाकीर्ण लगती है ॥ ६ ॥

अहमिह निवसामि नगणितवनवेतसा ।
स्मरति मधुसूदनो मामपि न चेतसा ॥ यामि० ॥ ७ ॥

मैं तो प्यारे कृष्णके लिए इस अरण्यमें बेतोंकी कुञ्जोंमें रहती हूं, किन्तु, मधुसूदन तो मुझे हृदयसे भी नहीं स्मरण करते ॥ ७ ॥

हरिचरणशरणजयदेवकविभारती ।
वसतु हृदि युवतिरिव कोमलकलावती ॥ यामि० ॥८॥

कोमल कलासे युक्त, श्रीकृष्णके चरणोंके शरणवाली जयदेवकविकी वाणी आपके हृदयमें इस तरह रहे जैसे—हाव-भाव-कटाक्ष-विक्षेपादि युक्त युवतियां रसज्ञोंके चित्तमें बसती हैं ॥ ८ ॥

तत्किं कामपि कामिनीमभिसृतः किं वा कलाकेलिभि-
र्बद्धो बन्धुभिरन्धकारिणि वनोपान्ते किमुद्भ्राम्यति ।
कान्तः क्लान्तमना मनागपि पथि प्रस्थातुमेवाक्षमः
सङ्केतीकृतमञ्जुवञ्जुललताकुञ्जेऽपि यन्नागतः ॥ १ ॥

सुन्दर वेतसलताके कुञ्जमें ( सङ्केतस्थानमें ) कृष्णके न आनेपर राधा सोचने लगीं—क्या प्रियतम अन्य कामिनीके पास चले गये ? क्या मित्रोंके हास-परिहासमें फंस गये ? अथवा इस अरण्यमें अन्धेरेके कारण इतस्ततः ( भूलकर ) घूम रहे हैं ? वा मेरी भांति वियोगी होकर चलनेमें असमर्थ हो गये ? । यथा-मैं उनके वियोगसे एक पग भी नहीं चल सकती वैसे ही वह भी हो गये ॥ १ ॥

( १ ) विरहियों को पुष्प कामोद्दीपक हैं ।

अथागतां माधवमन्तरेण सखीमियं वीक्ष्य विषादमूकाम् ।
विशङ्कमाना रमितङ्कयापि जनार्दनं दृष्टवदेतदाह ॥ २ ॥

तदन्तर दुःखी तथा मौन बिना कृष्णके आयी हुई (एकाकी) सखीको देख कर राधाने कहा—"क्या, कृष्ण किसी अन्य गोपाङ्गनाके साथ तो नहीं रमण करते हैं? ऐसा पूछते हुए राधाका भाव ऐसा मालूम पड़ा, मानो, वे कृष्णको अन्याङ्गनाके साथ रमण करते हुए देख रही हों ॥ २ ॥

वसन्तरागे एकतालीताले अष्टपदी ॥ १४ ॥

स्मरसमरोचितविरचितवेशा गलितकुसुमदलविलुलितकेशा ।
कापि चपला मधुरिपुणा विलसति युवतिरधिकगुणा ॥ ध्रु० ॥१॥

हे प्रिये! कामदेवके समरके अनुरूप आभूषणोंसे वेष रचनेवाली, जिसके बालों के फूल इधर-उधर गिर गये हैं तथा जिसका जूड़ा भी ढीला पड़ गया है, ऐसी कोई चपल कामिनी जो हमसे अधिक सुन्दर है कृष्णके साथ रमण कर रही है ॥१॥

हरिपरिरम्भणवलितविकारा ।
कुचकलशोपरि तरलितहारा ॥ कापि च० ॥ २ ॥

हे सखि! जिसे श्रीकृष्णके आलिङ्गनसे अनुराग उत्पन्न हो गया है, तथा जिसके कलशके समान कुचोंके ऊपर हार हिल रहे हैं, ऐसी कोई कामिनी कृष्णके साथ विलास कर रही है ॥ २ ॥

विचलदलकललितानचन्द्रा ।
तदधरपानरभसकृततन्द्रा ॥ कापि च० ॥ ३ ॥

हे प्रिये! जिसके सुन्दर मुखरूपी चन्द्रपर चपल अलकें (लटें) शोभित हो रहीं हैं तथा प्रिय द्वारा अधरपानसे जिसे आलस्य आ रहा है, ऐसी कोई रमणीके साथ कृष्ण रमण कर रहे हैं ॥ ३ ॥

चञ्चलकुण्डलदलितकपोला ।
मुखरितरशनजघनगतिलोला ॥ कापि च० ॥ ४॥

चञ्चल कुण्डलोंकी रगड़से जिसके गाल घिस गये हैं, झन-झन शब्द करनेवाली करधनी युक्त कमरकी चालसे चञ्चल कोई व्रजवनिता श्रीकृष्णके साथ आनन्द कर रही है ॥ ४ ॥

दयितविलोकितलज्जितहसिता ।
बहुविधकूजितरतिरसरसिता ॥ कापि च० ॥ ५ ॥

हे प्रिये ! रतिमें अनेकों तरहकी बाणीसे प्रसन्न तथा श्रीकृष्णके अपाङ्ग दर्शनसे लज्जापूर्वक हास्य करने वाली कोई गोप-ललना कृष्णके साथ रम रही है ॥ ५ ॥

विपुलपुलकपृथुवेपथुभङ्गा ।
श्वसितनिमीलितविकसदनङ्गा ॥ कापि च० ॥ ६ ॥

हे सखि ! श्वांस लेनेवाली तथा नेत्रोंको मूंदनेसे जिसका काम-भाव प्रफुल्लित हो गया है, एवं रतिके आनन्दसे कम्पित तथा रोमाञ्चित शरीरवाली कोई व्रज-वधू कृष्णके साथ विहार कर रही है ॥ ६ ॥

श्रमजलकणभरसुभगशरीरा ।
परिपतितोरसि रतिरणधीरा ॥ कापि च० ॥ ७ ॥

रति-श्रम जनित पसीनेके विन्दुओंसे शोभित शरीरवाली, तथा रतिके समय पतिके वक्षःस्थलपर सोनेवाली, रतिरूप समरमें प्रवीण, कोई, व्रजांगना कृष्णके साथ सम्भोग कर रही है ॥ ७ ॥

श्रीजयदेवभणितमतिललितम् ।
कलिकलुषं शमयतु हरिरमितम् ॥ कापि च० ॥ ८ ॥

जयदेव कविकृत हरिके रमणका अति ललित वर्णन कलियुगी पापोंका शमन करे ॥ ८ ॥

विरहपाण्डुमुरारिमुखाम्बुजद्युतिरयं तिरयन्नपि वेदनाम् ।
विधुरतीव तनोति मनोभुवः सुहृदये हृदये मदनव्यथाम् ॥ १ ॥

हे सुहृदये ! मेरे वियोगसे धूसर वर्णवाले श्रीकृष्णके मुखकमलके समान वर्णवाला कामदेवका सुहृद् यह चन्द्र आनन्द-प्रद होनेपर भी मेरे चित्तमें काम-व्यथा बढ़ाता है ॥ १ ॥

गुर्जररागे एकतालोताले अष्टपदी ॥ १५ ॥

समुदितमदने रमणीवदने चुम्बनवलिताधरे ।
मृगमदतिलकं लिखति सपुलकं मृगमिव रजनीकरे ॥

रमते यमुनापुलिनवने विजयी मुरारिरधुना ॥ ध्रु० ॥ १ ॥

हे प्रिये ! कामोद्दीपित, चुम्बन करनेसे सङ्कुचित, सुन्दर ओठोंवाली व्रजवनिताके मुखपर श्रीकृष्ण, दर्पसे, कस्तूरीका तिलक करते हैं। मानो, चन्द्रमें मृगचिह्न बनाते हैं ऐसे कामकेलि-विजयी कृष्ण अधुना, यमुनाके तीरवाले उपवनमें रमण कर रहे हैं ॥ १ ॥

घनचयरुचिरे रचयति चिकुरे तरलिततरुणानने ।
कुरबककुसुमं चपलासुषमं रतिपतिमृगकानने ॥ रमते० २ ॥

हे सखि ! मेघोंके झुण्डके समान मनोहर युवतियोंके चित्तको चञ्चल करनेवाले, कामदेवरूपी हरिणके वनरूप गोपांगनाकी चोटीमें कृष्ण बिजलीके समान पीले-पीले कुरबक पुष्प गूंथ रहे हैं ॥ २ ॥

घटयति सुघने कुचयुगगगने मृगमदरूषिते ।
मणिसरममलं तारकपटलं नखपदशशिभूषिते ॥ रमते० ॥ ३ ॥

हे प्रिये ! कस्तूरी चर्चित, आकाशरूपी विशाल कुचोंपर जो नखरूपी चन्द्रसे युक्त हैं, श्रीकृष्ण स्वच्छ मणियोंके हाररूपी तारागणोंको पहिनाते हैं। ( अर्थात्-गोपांगनाओंके कस्तूरी चर्चित, नखक्षत चिह्नित उत्तुङ्ग कुचोंपर मोतियोंकी मालाएं पहिना रहे हैं ) ॥ ३ ॥

जितबिसशकले मृदुभुजयुगले करतलनलिनीदले ।
मरकतवलयं मधुकरनिचयं वितरति हिमशीतले ॥ रमते० ॥ ४ ॥

हे सखि ! श्रीकृष्ण, कमल-दण्डियोंके सदृश कोमल भुजाओंसे युक्त कमलिनी दलके समान हथेलीवाले, तथा बरफके समान ठण्डे ठण्डे हाथोंमें कमलके ऊपर भौरोंके समान, पन्ना रत्नसे जड़े कङ्कणोंको पहिना रहे हैं ॥ ४ ॥

रतिगृहजघने विपुलापघने मनसिजकनकासने ।
मणिमयरशनं तोरणहसनं विकिरति कृतवासने ॥ रमते० ॥ ५ ॥

हे प्रिये ! वे कृष्ण कामदेवके लिए सुवर्णका आसन, रतिके निवास स्थान तथा मनोहर वस्त्रको धारण करनेवाले किसी गोपांगनाके उत्तुङ्ग जघनोंपर तोरणके तुल्य करधनी ( रशना ) पहिना रहे हैं ॥ ५ ॥

चरणकिसलये कमलानिलये नखमणिगणपूजिते ।
बहिरपवरणं यावकभरणं जनयति हृदि योजिते ॥ रमते० ॥६॥

हे प्रिये ! कमलाके निवास स्थानपर, तथा नखरूपी मणियोसे अलंकृत, कोमल-कोमल पल्लवोंके तुल्य चरणोंको ( किसी व्रजांगनाके चरणोंको ) अपने वक्षः स्थलके ऊपर रखकर उनमें महावर लगाते हैं ॥ ६ ॥

रमयति सुभृशं कामपि सुदृशं खलहलधरसोदरे ।
किमफलमवसं चिरमिह विरसं वद सखि विटपोदरे ॥ रमते० ॥७॥

हे प्रिये ! जब कि वह खल, बलरामका छोटाभाई किसी सुनयनीके साथ विहार करता है, तब कहो, मैं क्यों इस पेड़के नीचे नीरसी होकर प्रतीक्षा करूं ! ॥ ७ ॥

इह रसभणने कृतहरिगुणने मधुरिपुपदसेवके ।
कलियुगचरितं न वसतु दुरितं कविनृपजयदेवके॥रमते० ॥८॥

रस-वर्णन करनेवाले, हरि-गुण-गायक, श्रीकृष्णके चरण-सेवक, जयदेव कविके अन्तःकरणमें कलियुगके दुरित चरितका वास न हो ॥ ८ ॥

नायातः सखि निर्दयो यदि शठस्त्वं दूति किं दूयसे
स्वच्छन्दं बहुवल्लभः स रमते किं तत्र ते दूषणम् ॥
पश्याद्य प्रियसंगमाय दयितस्याकृष्यमाणं गुणै-
रुत्कण्ठार्तिभरादिव स्फुटदिदं चेतः स्वयं यास्यति ॥ १ ॥

हे सखि ! यदि वे निर्दय, ठग कृष्ण नहीं आये तो तू क्यों दुःखी हो रही है, क्योंकि वे तो अनेकों महिलाओंके साथ स्वेच्छासे रमण करते हैं, इसमें तेरा क्या दोष ? देख, आज कृष्णके वशीभूत होकर यह चित्त उत्कंठासे पियके समीप मिलने जायगा ॥ १ ॥

देशांकरागे रूपकताले अष्टपदी ॥ १६ ॥

अनिलतरलकुवलयनयनेन ।
तपति न सा किसलयशयनेन ।

सखि या रमिता वनमालिना ॥ ध्रु० ॥ १ ॥

हे सखि ! पवनसे कंपित कमलके समान नेत्रवाले, वनमालीके साथ जिस युवतीने विहार किया, वह कोमल-कोमल पल्लवोंकी सेजपर सोनेसे (मेरे समान) दुःखी नहीं होती ॥ १ ॥

विकसितसरसिजललितमुखेन ।

स्फुटति न सा मनसिजविशिखेन ॥ सखि० ॥ २ ॥

हे आलि ! फूले हुए कमलके सदृश मुखवाले श्रीकृष्णके साथ सम्भोग करनेवाली गोपवधू, कामबाणोंसे पीडित नहीं होती है। [अर्थात्-मेरे समान नारियां पीडित होती हैं, इति ध्वन्यते ] ॥ २ ॥

अमृतमधुरमृदुतरवचनेन

ज्वलति न सा मलयजपवनेन ॥ सखि० ॥ ३ ॥

हे प्रिये ! अमृतवत् मधुर तथा मृदुभाषी कृष्णके साथ विहार करनेवालीको मलयगिरिका पवन नहीं सताता ॥ ३ ॥

स्थलजलरुहरुचिकरचरणेन ।

लुठति न सा हिमकरकिरणेन ॥ सखि० ॥४॥

हे सखि ! स्थलकमलवत् सुन्दर हस्तपादधारी कृष्णके संग आनंदकारिणीको चन्द्रकी शीतल किरणें नहीं सन्तापतीं ॥ ४ ॥

सजलजलदसमुदयरुचिरेण ।

दलति न सा हृदि विरहभरेण ॥ सखि० ॥ ५ ॥

हे प्रिये ! जलपूर्ण मेघके समान आकृतिधारी कृष्णके साथ रमण करनेवालीको चिरकालके वियोगकी व्यथा नहीं पीड़ा देती ॥ ५ ॥

कनकनिकषरुचिशुचिवसनेन ।

श्वसिति न सा परिजनहसनेन ॥ सखि० ॥ ६ ॥

हे आलि ! सुवर्ण-कान्तिके समान पीताम्बरधारी कृष्णके साथ सम्भोगिताको सखियोंकी ठिठोलियोंसे ( परिहाससे ) दुःख नहीं होता ॥ ६ ॥

सकलभुवनजनवरतरुणेन ।

वहति न सा रुजमति करुणेन ॥ सखि० ॥ ७ ॥

हे सखि ! सकलभुवनमें श्रेष्ठ ( सर्वश्रेष्ठ ) युवक कृष्णके साथ जिसने विहार किया उसे कामपीड़ा कहां ? ॥ ७ ॥

श्रीजयदेवभाणित-वचनेन ।

प्रविशतु हरिरपि हृदयमनेन ॥ सखि० ॥ ८ ॥

जयदेवकविके इन वचनोंसे श्रीकृष्ण आपके हृदयमें प्रवेश करें ॥ ८ ॥

मनोभवानन्दन चन्दनानिल

प्रसीद रे दक्षिण मुञ्च वामताम् ।

क्षणं जगत्प्राण विधाय माधवं

पुरो मम प्राणहरो भविष्यसि ॥ १ ॥

हे कामदेवको आनन्द करानेवाले दक्षिणपवन ! कृपया, अपनी कुटिलता त्यागिये, हे जगत्प्राण ! मेरे सामने माधवको लाकर तब मेरे प्राण हरिये ॥ १ ॥

रिपुरिव सखीसंवासोऽयं शिखीव हिमानिलो

विषमिव सुधारश्मिर्यस्मिन्दुनोति मनोगते ।

हृदयमदये तस्मिन्नेवं पुनर्वलते बला-

त्कुवलयदृशां वामः कामो निकामनिरङ्कुशः ॥ २ ॥

हे प्रिये ! प्रियतमके स्मरणसे सखियोंके साथ आलाप-प्रलाप शत्रुवत्, शीतलपवन अग्निवत्, अमृतकिरणधारी चन्द्र विषवत्, अति क्लेशकारी मालूम पड़ते हैं इतना होनेपर भी, हठात्-मेरा चित्त उसी निर्दय कृष्णकी ओर झुका जाता है, वास्तवमें-मृगनयनियोंके लिए कामदेव अत्यन्त दुष्ट तथा निरङ्कुश है २

बाधां विधेहि मलयानिल पञ्चबाण

प्राणान् गृहाण न गृहं पुनराश्रयिष्ये ।

किं ते कृतान्तभगिनि क्षमया तरङ्गै-

रङ्गानि सिञ्च मम शाम्यतु देहदाहः ॥ ३ ॥

हे मलयपवन ! आप मुझे खूब सता लीजिये, हे पञ्चबाण ! ( कामदेव )

आप भी मेरे प्राणोंको हर लीजिये, परन्तु, प्राणोंके रहते मैं घर वापस न जाऊंगी। हे यमराजकी बहिन, यमुने! आप क्यों बांकी रखती हैं आप भी आपनी तरङ्गोंसे मुझे सींचिये, जिससे मेरे शरीरका दाह दूर हो जाय(१) ॥ ३ ॥

सान्द्रानन्दपुरन्दरादिदिविषद्वृन्दैरमन्दादरा—
दानन्दैर्मुकुटेन्द्रनीलमणिभिः सन्दर्शितेन्दीवरम् ।
स्वच्छन्दं मकरन्दसुन्दरगलन्मन्दाकिनीमेदुरं
श्रीगोविन्दपदारविन्दमशुभस्कन्दाय वन्दामहे ॥ ४ ॥

इति श्रीगीतगोविन्दे नागरनारायणो नाम सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥

जिन भगवान् कृष्णके चरणकमलोंको सानन्द इन्द्रादि देवगण अपने रत्न जड़े हुए मुकुटोंसे आदर पूर्वक स्पर्श करते हैं तथा जिनके चरणकमलोंके परागसे गङ्गाजल सदा व्याप्त रहता है उन भगवान्के पदारविन्दोंको अशुभके नाशके लिए प्रणाम है।

इस प्रकार गीतगोविन्दकाव्यके नागर नारायण नामक सप्तमसर्गकी "इन्दु" टीका समाप्त हुई।

---

## अष्टमः सर्गः

अथ कथमपि यामिनीं विनीय स्मरशरजर्जरिताऽपि सा प्रभाते ।
अनुनयवचनं वदन्तमग्रे प्रणतमपि प्रियमाह साभ्यसूयम् ॥ १ ॥

इसके अनन्तर येन-केन प्रकारेण रात बिता करके कामबाणोंसे पीड़ित होने पर भी वह राधा, प्रातः कालमें आकर विनयपूर्वक वचनोंको बोलनेवाले तथा पैरों पड़नेवाले श्रीकृष्णसे ईर्ष्यायुक्त वचनोंको, बोलीं ॥ १ ॥

भैरवीरागे रूपकताले अष्टपदी ॥ १७ ॥

रजनिजनितगुरुजागररागकषायितमलसनिमेषम् ।
वहति नयनमनुरागमिव स्फुटमुदितरसाभिनिवेशम् ॥
हरि हरि याहि माधव याहि केशव मा वद कैतववादम् ।
तामनुसर सरसीरुहलोचन या तव हरति विषादम् ॥ध्रु० ॥१॥

---

(१) आप मुझे जलमग्न करलीजिये।

आपके ये नेत्र रात्रिके जागरणसे लाल-लाल हो रहे हैं जिनसे स्पष्टरूपेण प्रकट है कि किसी नायिकाके शृंगाररसका अनुराग इनमें भरा हुआ है। अतः हे माधव ! आप उसी नायिकाके पास जाइये जो आपके कष्टोंको दूर करती है। हे कमलनयन ! आप धूर्त्ताभरे वाक्योंको मेरे सम्मुख न कहिये ॥१ ॥

कज्जलमलिनविलोचनचुम्बनविरचितनीलिमरूपम् ।
दशनवसनमरुणं तव कृष्ण तनोति तनोरनुरूपम् ॥हरि०॥२॥

हे कृष्ण ! काजलसे मलिन नेत्रोंके चुम्बनसे आपके ये लाल-लाल ओंठ नीले पड़ गये हैं तथा आपकी देहके रंगमें मिल गये हैं। (आपके ये ओंठ अन्य कारणोंसे काले नहीं हुए ) ॥ २ ॥

वपुरनुहरति तव स्मरसङ्गरखरनखरक्षतरेखम् ।
मरकतशकलकलितकलधौतलिपेरिव रतिजयलेखम्। हरि० ॥३॥

हे कृष्ण ! आपका शरीर कामयुद्धमें तीखे-तीखे नाखूनोंके व्रणों रेखावान् होकर ऐसा प्रतीत होता है जैसे—पन्नेके टुकड़े पर सुवर्णाक्षरोंसे रतिजय लेख मुद्रित हो, अर्थात् उस नायिकाने मुग्धहोकर आपको खूब नोंचा हो जिससे ये नखक्षत आपके शरीरमें रतिमें विजय पानेके प्रमाणकी भांति दीखते हैं, अतः हे नाथ ! आप उसीके पास जाइये ॥ ३ ॥

चरणकमलगलदलक्तकसिक्तमिदं तव हृदयमुदारम् ।
दर्शयतीव बहिर्मदनद्रुमनवकिसलयपरिवारम् ॥ हरि० ॥४॥

हे कृष्ण ! उस नायिकाके चरणकमलोंमें लगे हुए महावरसे आर्द्र यह आपका हृदय-पटल ऐसा दीखता है मानो, मदनरूपी वृक्षसे नवीन-नवीन पत्तोंका समूह बाहर आ गया हो। अतः आप उसी प्रेमिकाके समीप जाइये ॥ ४ ॥

दशनपदं भवदधरगतं मम जनयति चेतसि खेदम् ।
कथयति कथमधुनापि मया सह तव वपुरेतदभेदम् ॥ हरि०॥५॥

हे कृष्ण ! आपके ओठों पर अन्याङ्गनाओंसे किये हुए दन्तक्षत मेरे चित्तको क्लेशित करते हैं, क्या इतनेपर भी आप कहेंगे कि मुझमें तथा तुममें अभेद सम्बन्ध है ! हे माधव ! आप उसीके पास जांय ॥ ५ ॥

बहिरिव मलिनतरं तव कृष्ण मनोऽपि भविष्यति नूनम् ।
कथमथ वञ्चयसे जनमनुगतमसमशरज्वरदूनम् ॥हरि०॥६॥

हे कृष्ण ! मुझे ऐसा अनुभव होता है कि जैसे आपका शरीर काले रङ्गका है वैसे ही आपका अन्तःकरण भी काले रङ्गका है। अन्यथा, कामपीड़िता मुझे क्यों छलते हो ? आप वहीं जाइये ॥ ६ ॥

भ्रमति भवानबलाकवलाय वनेषु किमत्र विचित्रम् ।
प्रथयति पूतनिकैव वधूवधनिर्दयबालचरित्रम् ॥हरि० ॥७॥

हे कृष्ण ! इन विपिनमें अबलाओंको सतानेके लिए आप भ्रमण करते हैं, इसमें किञ्चित भी संशय नहीं, क्योंकि निर्दय होकर स्त्रियोंको मारनेवाला आपका बालचरित है जो (१) पूतनासे जाना गया है ॥ ७ ॥

श्रीजयदेवभणितरतिवञ्चितखण्डितयुवतिविलापम् ।
शृणुत सुधामधुरं विबुधा विबुधालयतोऽपि दुरापम् ॥हरि०॥८॥

हे विद्वानो ! जयदेवकवि कृत सम्भोग शृंगारवञ्चित खण्डिता नायिकाका विलाप सुनिये, अमृतके समान मधुर यह कृष्ण-चरित सुरपुरमें देवतोंको भी दुष्प्राप्य है ॥ ८ ॥

तवेदं पश्यन्त्याः प्रसरदनुरागं बहिरिव
प्रियापादालक्तच्छुरितमरुणच्छायहृदयम्
ममाद्य प्रख्यातप्रणयभरभङ्गेन कितव !
त्वदालोकः शोकादपि किमपि लज्जां जनयति ॥१॥

हे कितव ! अन्य अङ्गनाके पैरोंमें लगे हुए रक्तवर्णके महावरसे आपका अन्तःकरण बाह्यराग रञ्जित ज्ञात होता है । इस कृत्रिम प्रेमको ज्ञातकर जगत्प्रसिद्ध विपुल अनुरागके नाशके भयसे आपका दर्शन, मुझे शोकसे विचित्र लज्जाको, प्रकट करता है [ अर्थात् आपमें आन्तरिक प्रेम नहीं है । ] ॥ १ ॥

प्रातर्नीलनिचोलमच्युत उरः सङ्गीतपीतांशुकं
राधायाश्चकितं विलोक्य हसति स्वैरं सखीमण्डले ।

(१) पूतना एक राक्षसी थी जिसे कृष्णने बालकालमें मारा था ।

व्रीडाचञ्चलमञ्चल नयनयो राधाय राधानने
स्मेरस्मेरमुखोऽयमस्तु जगदानन्दाय नन्दात्मजः ॥ २ ॥

इति श्रीगीतगोविन्दे खण्डितावर्णने विलक्षणलक्ष्मीपति-
र्नामाष्टमः सर्गः ॥ ८ ॥

प्रभातमें नीलेरङ्गके वस्त्रोंको धारण किये कृष्ण तथा पीताम्बराच्छादित राधाके वक्ष स्थलको देखकर सखि-मण्डलमें आश्चर्यकी सीमा न रही, तत्काल, मन्द-मन्द हास्यसे लज्जायुक्त चञ्चल नयनोंके अञ्चलको राधाके मुखकमलपर धरनेवाले नन्दके पुत्र जगत्को कल्याणकारी हों ॥ २ ॥

इस प्रकार गीतगोविन्दकाव्यकी विलक्षण लक्ष्मीपति नामक अष्टम सर्गकी
"इन्दु" टीका समाप्त हुई ।

---

## नवमः सर्गः ।

अथ तां मन्मथखिन्नां रतिरसभिन्नां विषादसम्पन्नाम् ।
अनुचिन्तितहरिचरितां कलहान्तरितामुवाच रहः सखी ॥१॥

तत् पश्चात्, कामपीड़िता, रतिसुखरहिता, अत्यन्त दुःखिता, हरिचरित स्मरणकर्त्री, कलहान्तरिता ( जो पतिका अपमान करके पश्चात्ताप करती है ) राधासे एकान्तमें एक सखी कहने लगी ॥ १ ॥

गुर्जरीरागे रूपकताले अष्टपदी ॥ १८ ॥

हरिरभिसरति वहति मधुपवने ।
किमपरमधिकसुखं सखि भवने ॥
माधवे मा कुरु मानिनि मानमये । ध्रु० ॥ १ ॥

अयि मानिनि ! अब आप कृष्णके प्रति मान मत करिये, हे प्रिये ! यह वसन्तकी हवा बह रही है, तथा प्रिय कृष्ण भी सङ्केतस्थलमें आ गये हैं, क्या इससे भी ज्यादा घरपर आनन्द मिलेगा ? ॥ १ ॥

तालफलादपि गुरुमतिसरसम् ।
किं विफलीकुरुषे कुचकलशम् ॥ माध० ॥ २ ॥

हे प्रिये ! ताल फलसे भी अधिक कठोर और सरस तथा कलशके समान

विशाल इन स्तनोंको क्यों विफल करती हो ? [ कृष्णकरस्पर्शसे इन्हें सफल करो ] ॥ २ ॥

कति न कथितमिदमनुपदमचिरम् ।
मा परिहर हरिमतिशयरुचिरम् । माध० ३ ॥

अयि मानिनि ! क्या मैंने कई बार नहीं कहा था ? "परम रमणीय कृष्णका परित्याग न करिये" ॥ ३ ॥

किमिति विषीदसि रोदिषि विकला ।
विहसति युवतिसभा तव सकला ॥ माध० ॥ ४ ॥

हे प्रिये ! अब आप क्यों पश्चात्ताप करती हैं ! क्यों रोती तथा व्याकुल होती हैं ? यह देखिये, आपपर युवतियां हंसती हैं [ अष्टावसरन्यायेन आपने प्रियका परित्याग किया उसका फल है ] ॥ ४ ॥

मृदुनलिनीदलशीतलशयने ।
हरिमवलोकय सफलय नयने ॥ माध० ॥ ५ ॥

हे मानिनि ! इन मृदु-मृदु कुईं पुष्पोंकी शीतल शय्यापर कृष्णको देखिये पुनः ( दर्शनानन्तर ) नयनोंको कृत्यकृत्य करिये ॥ ५ ॥

जनयसि मनसि किमिति गुरुखेदम् ।
शृणु मम वचनमनीहितभेदम् ॥ माध० ॥ ६ ॥

हे प्रिये ! आप अपने चित्तमें क्यों इस तरह दीर्घ विषाद करती हैं मेरी बातें सुनिये, मैं आपकी हिताभिलाषिणी हूं ॥ ६ ॥

हरिरुपयातु वदतु बहुमधुरम् ।
किमिति करोषि हृदयमतिविधुरम् ॥ माध० ॥७॥

हे मानिनि ! अपने मनको क्यों क्लेशित कर रही हो ? ऐसा उपाय करिये ( इस रीतिसे कार्य करिये ) कि श्रीकृष्ण आपके समीप आवें तथा आप उनसे मधुर-मधुर बातें करें ॥ ७ ॥

श्रीजयदेवभणितमतिललितम् ।
सुखयतु रसिकजनं हरिचरितम् ॥ माध० ॥ ८ ॥

जयदेव कविकृत परम रमणीय श्रीकृष्ण चरित रसज्ञोंको सुखकारी हो ॥८॥

स्निग्धे यत्परुषासि यत्प्रणमति स्तब्धासि यद्रागिणि
द्वेषस्थासि यदुन्मुखे विमुखतां यातासि तस्मिन्प्रिये ।
तद्युक्तं विपरीतकारिणि तव श्रीखण्डचर्चाविषं
शीतांशुस्तपनो हिमं हुतवहः क्रीडामुदो यातनाः ॥१॥

हे राधे ! आप प्रेम करनेवाले श्रीकृष्णसे तीक्ष्ण वार्ता करती हैं, नम्रतासे विनय करनेवाले कृष्णसे स्तब्धता करती है, अनुरागी कृष्णसे विराग करती हैं, अभिमुखी कृष्णसे विमुखी होती है उसीका कुपरिणाम है कि आपको श्रीखण्ड (चन्दन) की चर्चा विषवत्, चन्द्र सूर्यवत्, हिम अग्निवत् तथा क्रीडाका सुख वेदना समान, विपरीत लग रहा है ॥ १ ॥

अन्तर्मोहनमौलिघूर्णनचलन्मन्दारविस्रंसनः
स्तब्धाकर्षणदृष्टिहर्षणमहामन्त्रः कुरङ्गीदृशाम् ।
दृप्यद्दानवदूयमानदिविषद्दुर्वारदुःखापदां
भ्रंशः कंसरिपोर्व्यपोहयतु वः श्रेयांसि वंशीरवः ॥ २ ॥

इति श्रीगीतगोविन्दे कलहान्तरितावर्णने मुग्धमुकुन्दो
नाम नवमः सर्गः ॥ ९ ॥

मृगनयनियोंके अन्तःकरणोंको मोहनेमें जिनके मुकुटमें गूंथे हुए पारिजातके पुष्प खिसक गये हैं, तथा जो अचेतन पदार्थोंतकको आकर्षित करते हैं, एवं देखनेवालोंको हर्षान्वित करते हैं, जो महामन्त्र स्वरूप हैं, जो उद्दण्ड दैत्योंसे पीडित देवताओंके दुःसह दुःखोंका शमन करते हैं, उन भगवान् कृष्णके वंशीकी ध्वनि आप लोगोंका मंगल करे।

इस प्रकारसे गीतगोविन्द काव्यके मुग्धमुकुन्द नामक नवम सर्गकी
"इन्दु" नामक हिन्दी टीका समाप्त हुई।

---

## दशमः सर्गः ।

अत्रान्तरे मसृणरोषवशामसीम-
निःश्वासनिःसहमुखीं समुपेत्य राधाम् ।

सव्रीडमीक्षितसखीवदनां दिनान्ते
सानन्दगद्गदमिदं हरिरित्युवाच ॥ १ ॥

इसी समय सायङ्कालमें, अत्यन्त रोष करनेवाली, अधिक श्वासोंके छोड़नेसे म्लान-मुखवाली, लज्जापूर्वक सखीके मुखको देखनेवाली सुमुखी राधाके समीप आकर कृष्णने आनन्दसे कहा ॥ १ ॥

देशवराडिरागे अडवताले अष्टपदी ॥ १६ ॥

वदसि यदि किञ्चिदपि दन्तरुचिकौमुदी
हरति दरतिमिरमतिघोरम् ।
स्फुरदधरसीधवे तव वदनचन्द्रमा
रोचयति लोचनचकोरम् ॥
प्रिये चारुशीले प्रिये चारुशीले
मुञ्च मयि मानमनिदानम् ।
सपदि मदनानलो दहति मम मानसं
देहि मुखकमलमधुपानम् ॥ ध्रु० ॥ १ ॥

हे प्रिये ! हे कोमलचित्ते आप यदि कुछ भी कहती हैं तो आपकी दन्त-प्रभा मेरे भयरूपी गाढान्धकारका शमन कर देती है, तथा आपका मुखरूपी चन्द्र आपके अधरोंकी सुधा पीनेके लिए मेरे नयनरूपी चकोरोंको प्रोत्साहित करता है। हे प्रिये चारुशीले ! मेरे ऊपर कृपा करके मानका परित्याग कीजिये, तथा अपने मुखरूपी कमलका मधुपान (चुम्बन) दीजिये क्योंकि मेरा चित्त कामाग्निसे जल रहा है [ अतः आपके मधुपानसे शान्त हो ] ॥ १ ॥

सत्यमेवासि यदि सुदति ! मयि कोपिनी
देहि खरनखरशरघातम् ॥
घटय भुजबन्धनं जनय रदखण्डनं
येन वा भवति सुखजातम् ॥ प्रिये चारु० ॥ २ ॥

हे शुभ्रदन्ते ! आपको जिस रीतिसे मुझे दण्ड देना हो दीजिये, यदि आप

मेरे ऊपर यथार्थ रोष करती हैं तो मुझे अपने तेज नाखूनरूपी बाणोंसे बेधिये, भुजाओंमें बांध लीजिये, दांतोंसे काट लीजिये [ विश्वासघातीको राजदण्ड-पहले मारका बादमें बन्धनका, अन्तमे फांसी ( काटने ) का दिया जाता है । इसी अभिप्रायसे श्रीकृष्णकी उक्ति है ] ॥ २ ॥

त्वमसि मम भूषणं त्वमसि मम जीवनं
त्वमसि मम भवजलधिरत्नम् ।
भवतु भवतीह मयि सततमनुरोधिनी
तत्र मम हृदयमतियत्नम् ॥ प्रिये चारु० ॥ ३ ॥

हे प्राणेश्वरी ! आप मेरे लिए अलङ्कार हैं, आप मेरे प्राणस्वरूप हैं, आप मेरे लिए संसार सागरमें मणिके सदृश हैं, अतः सदा मेरे ऊपर कृपा कीजिये, आपको ही प्रमुदित करनेके लिए मेरा हृदय प्रयत्न करता है ॥ ३ ॥

नीलनलिनाभमपि तन्वि ! तव लोचनं धारयति कोकनदरूपम् ।
कुसुमशरबाणभावेन यदि रञ्जयसि कृष्णमिदमेतदनुरूपम् ॥
॥ प्रिये चारु० ॥ ४ ॥

हे तन्वि ! आपके ये नेत्र नील कमलके सदृश होनेपर भी रोषसे अरुण वर्णके हो रहे हैं, यदि मुझ कृष्णको अपने कामबाणस्वरूप नेत्रोंसे रंग रही हो तो यह तुम्हारा रंगना ठीक ही है । [ क्यों कि–जो बाणसे वेधित होता है वह रक्तसे लाल भी हो जाता है । अथवा–मेरे ऊपर क्रोध करनेसे ही तुम्हारी काली आंखे सुन्दर लाल लाल हो गई हैं । इस पुरस्कारमें अपने कटाक्षोंसे मुझे भी लाल कर लिजिये ( प्रसन्न हो जाइये ) ] ॥ ४ ॥

स्फुरतु कुचकुम्भयोरुपरि मणिमञ्जरी रञ्जयतु तव हृदयदेशम् ।
रसतु रसनापि तव घनजघनमण्डले घोषयतु मन्मथनिदेशम् ॥
॥ प्रिये चारु० ॥ ५ ॥

हे प्राणेश्वरी ! आपके कलशरूपी स्तनोंपर रत्नोंकी माला शोभायमान हो, तथा वह माला आपके वक्षस्थलको अनुरक्त करनेवाली हो । हे प्रिये ! आपके कमरके ऊपर करधनीकी ध्वनि गूंजे, तथा वही करधनीकी ध्वनि कामदेवकी आज्ञा-

की घोषणा करने वाली हो (१) ॥ ५ ॥

**स्थलकमलगञ्जनं मम हृदयरञ्जनं जनितरतिरङ्गपरभागम् ।**
**भण मसृणवाणि करवाणि चरणद्वयं सरसलसदलक्तकरागम् ॥**
**॥ प्रिये चारु० ॥ ६ ॥**

हे स्निग्धवचने ! स्थल कमलकी शोभाको तिरस्कारित करनेवाले, मेरे चित्तको आनन्दित करनेवाले, रतिरागमें मोद करानेवाले, आपके इन दोनों पैरोंमें, यदि आप कहें तो, महावर लगाऊं ॥ ६ ॥

**स्मरगरलखण्डनं मम शिरसि मण्डनं देहि पदपल्लवमुदारम् ।**
**ज्वलति मयि दारुणो मदनकदनानलो हरतु तदुपाहितविकारम् ॥**
**प्रिये चारु० ॥ ७ ॥**

हे हृदयेश्वरी ! कामदेवरूपी विषका शमन करनेवाले, सुन्दर नवीन पत्तोंके समान अपने कोमल चरणोंको मेरे शिरपर धरिये, क्योंकि भीषण काम ज्वाला मुझे सन्तापती है, जिससे जरा शान्ति मिले ॥ ७ ॥

**इति चटुलचाटुपटुचारुमुरवैरिणो राधिकामधिवचनजातम् ।**
**जयति पद्मावतीरमणजयदेवकविभारतीभणितमिति गीतम् ॥८॥**

इस रीतिसे चतुरता तथा प्रेमरस परिपूरित पद्माके पति जयदेव कविकी वाणीसे मनोहर राधाके प्रति मुरके रिपु मानिनियोंको अत्यन्त आनन्द प्रद श्रीकृष्ण द्वारा कथित वाक्य सभी वाक्यों से बढ़-चढ़कर हैं ॥ ८ ॥

**परिहर कृतातङ्के शङ्कां त्वया सततं घन-**
**स्तनजघनयाक्रान्ते स्वान्ते परानवकाशिनि ।**
**विशतिवितनोरन्यो धन्यो न कोऽपि ममान्तरं**
**स्तनभरपरीरम्भारम्भे विधेहि विधेयताम् ॥ १ ॥**

हे सन्तप्ते ! आप शंकाएं त्यागिये, क्योंकि कठोर स्तनों तथा सुन्दर कमरवाली आप ही मेरे हृदयमें सदा व्याप्त रहती हैं, अतः निराकार अनङ्ग (कामदेव) के अतिरिक्त, मेरे अन्तःकरणमें शुभलक्षण युक्त अन्य किसी रमणीके

---

( १ ) रोषसे जो अलङ्कार उतार दिये हैं, उन्हें धारण करिये ।

लिए स्थान ही नही रहता है, अतः हे मानिनि, प्रणय-पूर्वक आलिङ्गन करिये। [ आप मुझे वशी समझिये ] ॥ १ ॥

मुग्धे ! विधेहि मयि निर्दयदन्तदंशं
दोर्वल्लिबन्धनिबिडस्तनपीडनानि ।
चण्डि ! त्वमेव मुदमञ्चय पञ्चबाण-
चण्डालकाण्डदलनादसवः प्रयान्ति ॥ २ ॥

हे मुग्धे ! अन्यथा, आप मुझे निर्दय होकर दांतोंसे काटिये भुजाओंरूपी लताओंसे बांधिये, तथा अत्यन्त कठोर कुचोंसे ताडना दीजिये, क्योंकि दोषी को ये ही दण्ड दिये जाते हैं, हे चण्डि ! आप ही मेरी रक्षा करिये, क्योंकि चण्डाल कामबाणोंसे मेरे प्राण जा रहे हैं। [ अतः सहायता करिये ] ॥ २ ॥

शशिमुखि ! तव भाति भङ्गुरभ्रू-
र्युवजनमोहकरालकालसर्पी ।
तदुदितभयभञ्जनाय यूनां
त्वदधरसीधुसुधैव सिद्धमन्त्रः ॥ ३ ॥

हे चन्द्रानने ! आपकी तिरछी भौंहें युवकोंको मोहनेमें भयङ्कर काले सर्पकी तरह हैं, इन भौहोंसे मूर्च्छित हुए युवकोंको केवल आपकी अधररूपी सुधा ही औषधि है ॥ ३ ॥

व्यथयति वृथा मौनं तन्वि ! प्रपञ्चय पञ्चमं
तरुणि ! मधुरालापैस्तापं विनोदय दृष्टिभिः ।
सुमुखि ! विमुखीभावं तावद्विमुञ्च न वञ्चय
स्वयमतिशयस्निग्धो मुग्धे ! प्रियोऽहमुपस्थितः ॥ ४ ॥

हे कृशाङ्गि ! आपका मौनत्व मुझे वृथा कष्ट दे रहा है, हे तरुणि ! मधुर-मधुर बाणीसे मेरा ताप दूर करिये, नयनोंसे विनोद करिये। [ मौन छोड़ कर एक नजर देखिये तो ] हे चारुवक्त्रे ! विमुखत्व त्यागिये, मुझे वृथा मत ठगिये क्योंकि हे मुग्धे ! मैं आपका अनन्य प्रेमी स्वयं आ गया हूं ॥ ४ ॥

बन्धूकद्युतिबान्धवोऽयमधरः स्निग्धो मधूकच्छवि-

गण्डश्चण्डि ! चकास्ति नीलनलिनश्रीमोचनं लोचनम् ।
नासाभ्येति तिलप्रसूनपदवीं कुन्दाभदन्ति प्रिये !
प्रायस्त्वन्मुखसेवया विजयते विश्वं स पुष्पायुधः ॥ ५ ॥

हे (१)चण्डि ! (२)दुपहरियाके फूलके सदृश यह आपका अधर, महुएके फूलकी प्रभाके समान ये आपके चिकने गाल, नील कमलोंकी कान्तिको चुरानेवाले ये आपके नेत्र, तिलके पुष्पके सदृश आपकी यह नासिका शोभा दे रही है । हे कुन्ददन्ते ! कामदेव आपके मुखकी सेनासे ही विश्वविजय करता है [ कामदेव पांच पुष्प-बाणोंसे विश्वविजयी कहाते हैं, वह—१ बन्धूक, २ मधूक, ३ नीलोत्पल, ४ तिलपुष्प और ५ कुन्दरूप पाँचो पुष्प-बाण आप हीके मुखपर विराजमान हैं ] ॥ ५ ॥

दृशौ तव मदालसे वदनमिन्दुमत्यान्वितं
गतिर्जनमनोरमा विधुतरम्भमूरुद्वयम् ।
रतिस्तव कलावती रुचिरचित्रलेखे भ्रुवा-
वहो विबुधयौवनं वहसि तन्वि ! पृथ्वीगता ॥ ६ ॥

हे मुग्धे ! आपके नयन मदसे भरे हुए हैं, आपका मुख चन्द्रके समान है, आपका गमन मनोरम है, आपकी जांघे केलेके खम्भोंको जीतनेवाली हैं, आपकी रतिकेलि कलापूर्ण है, आपकी भौंहें सुन्दर चित्र रेखावत् हैं, हे तन्वि ! आश्चर्य है कि पृथिवीपर रहने पर भी आपमें सुराङ्गनाओंके गुण विद्यमान हैं ॥ ६ ॥

प्रीतिं वस्तनुतां हरिः कुवलयापीडेन सार्धं रणे
राधापीनपयोधरस्मरणकृत्कुम्भेन सम्भेदवान् ।
पत्रे बिभ्यति मीलति क्षणमपि क्षिप्रं तदालोकनाद्
व्यामोहेन जितं जितं जितमिति व्यालोलकोलाहलः ॥७॥

इति श्रीगीतगोविन्दे मानिनि वर्णने चतुरचतुर्भुजो नाम
दशमः सर्गः ॥ १० ॥

---

( १ ) चण्डि—अत्यन्त कोपवती नारी । चण्डस्त्वत्यन्तकोपनः—इत्यमरः ।
( २ ) दुपहरिया—यह फूल लाल होता है ।

(१)कुवलयापीडके साथ युद्ध करते हुए उसके कुम्भको भेदन करते हुए राधाके उन्नत स्तनोंका स्मरण करनेवाले, भयदायी हाथीकी मृत्यु देखकर "कंसको जीतलिया" ऐसा कोलाहल मचा, उस कोलाहलको मचानेवाले कार्यं को करनेवाले, श्रीकृष्ण हमारा अनुराग परिवर्द्धित करें ॥ ७ ॥

इस प्रकारसे गीतगोविन्द काव्यके चतुरचतुर्भुजनामक दशम सर्गकी "इन्दु" नामक हिन्दी टीका समाप्त हुई ।

---

## एकादशः सर्गः ।

सुचिरमनुनयने प्रीणयित्वा मृगाक्षीं
गतवति कृतवेषे केशवे कुञ्जशय्याम् ।
रचितरुचिरभूषां दृष्टिमोषे प्रदोषे
स्फुरति निरवसादां कापि राधां जगाद ॥ १ ॥

मृगनयनी राधाके साथ बहुत देरतक प्रेमालाप करके उन्हें पुलकित करके सन्ध्या समय श्रीकृष्णके कुञ्जमें शयन करने चले जानेपर, एक सखीने राधाका अच्छा शृङ्गारकरके प्रमुदित हृदयवाली राधासे कहा ॥ १ ॥

वसन्तरागे रूपकताले अष्टपदी ॥ २० ॥

विरचितचाटुवचनरचनेन चरणरचितप्राणपातम् ।
सम्प्रति मञ्जुलवञ्जुलसीमानि केलिशयनमनुयातम् ॥
मुग्धे मधुमथनमनुगतमनुसर राधिके ॥ ध्रु० ॥ १ ॥

हे मुग्धे ! मधुर वचनोंको बोलनेवाले, आपके पैरों पड़नेवाले, अधुना, आपके अनुकूल वेतस लतागृहमें क्रीड़ाशयनपर पधारे हैं, अतः हे राधे ! उन मधुरिपु, कृष्णके समीप शीघ्र चलिये ॥ १ ॥

घनजघनस्तनभारभरे दरमन्थरचरणविहारम् ।
मुखरितमणिजञ्जीरमुपेहि विधेहि मरालविकारम् ॥ मुग्धे० ॥ २ ॥

हे कठोर जांघो तथा उन्नत उरोजोंवाली, राधे ! धीरे-धीरे पैरोंको पृथिवी

---

(१) कुवलयापीड—कंसके हाथीका नाम था ।

पर धरती हुई तथा मणियों जड़े नूपुर आदि पैरके आभूषणोंको बजाती हुई हंसकी चालसे आप श्रीकृष्णके समीप चलिये ॥ २ ॥

श्रृणु रमणीयतरं तरुणीजनमोहनमधुरिपुरावम् ।
कुसुमशरासनशासनवन्दिनि पिकनिकरे भज भावम् ॥मुग्धे०॥३॥

हे वयस्ये ! युवतियोंको मोहनेवाले, तथा रसज्ञ श्रीकृष्णकी बांसुरीकी ध्वनि सुनिये, तथा कामदेवकी आज्ञाके लिए स्तुति करनेवाली कोयलके भावको धारिये। [ श्रीकृष्णके समीप चलकर कोकिल-कंठी होकर बात करिये ] ॥ ३ ॥

अनिलतरलकुवलयनिकरेण करेण लतानिकुरम्बरम् ।
प्रेरणमिव करभोरु ! करोति गतिं प्रति मुञ्च विलम्बम् ॥मुग्धे०॥४॥

हे करभोरु ! ये देखिये, इन लताओंका झुण्डका झुण्ड पवन द्वारा प्रेरित होकर चञ्चल पल्लवरूपी हाथोंसे आपको गमनकी प्रेरणा कर रहा है, अतः हे प्रिये ! झटसे चलिये ॥ ४ ॥

स्फुरितमनङ्गतरङ्गवशादिव सूचितहरिपरिरम्भम् ।
पृच्छ मनोहरहारविमलजलधारममुं कुचकुम्भम् ॥ मुग्धे० ॥ ५ ॥

हे सखि ! यदि आपको उक्त पवन प्रेरणापर विश्वास नहीं है, तो कामदेवके तरंगके वशीभूत होकर हिलनेवाले, तथा श्रीकृष्णके आलिंगनको प्रथम हीसे सूचित करनेवाले, एवं हाररूपी जलधारावाले, कुम्भके समान अपने इन कुचद्वय से पूछ लीजिये कि ये क्योंकर स्फुरण कर रहे हैं ॥ ५ ॥

अधिगतमखिलसखीभिरिदं तव वपुरपि रतिरणसज्जम् ।
चण्डि ! रणितरशनारवडिण्डिममभिसर सरसमलज्जम् ॥मुग्धे०॥६॥

हे रसज्ञे ! सभी सखियोंने यह बात ज्ञात करली है कि आपकी देह रतिरूपी संग्रामके लिए प्रस्तुत है, ( ऐसी अवस्थामें ) हे चण्डि ! लज्जाको त्यागकर करधनीको शब्दायमान करती हुई आप चलिये [ आपकी अवस्था रमण योग्य है ] ॥ ६ ॥

स्मरशरसुभगनखेन सखीमवलम्ब्य करेण सलीलम् ।
चलवलयक्वणितैरवबोधय हरिमपि निजगतिशीलम् ॥मुग्धे०॥७॥

हे कल्याणि ! कामदेवके बाणके समान सुन्दर नखवाले हाथसे लीलायुक्त ( हाव-भावके साथ ) सखीके हाथ पकड़कर चलिये, तथा कड़ोंके घुंघरुओंको ध्वन्यमान करके अपने स्वभावको श्रीकृष्णको बतलाइये ॥ ७ ॥

श्रीजयदेवभणितमधुरीकृतहारमुदासितवामम् ।
हरिविनिहितमनसामधितिष्ठतु कण्ठतटीमविरामम् ॥ मुग्धे० ॥८॥

जयदेव कवि द्वारा रचित यह गीत मणियोंकी माल्यको तिरस्कारित करने वाला, युवतियोंको उदासीन बनानेवाला हरिसेवियोंके कण्ठमें बसे ॥ ५ ॥

स मां द्रक्ष्यति वक्ष्यति स्मरकथां प्रत्यङ्गमालिङ्गनैः
प्रीतिं यास्यति रंस्यते सखि समागत्येति चिन्ताकुलः ।
स त्वां पश्यति वेपते पुलकयत्यानन्दति स्विद्यति
प्रत्युद्गच्छति मूर्च्छति स्थिरतमःपुञ्जे निकुञ्जे प्रियः ॥ १ ॥

हे राधिके ! प्रगाढ़ अन्धकारमें स्थित लतागृहमें विराजमान आपके प्रिय कृष्ण चिन्ताकुल होकर सोचते हैं-वे राधा मुझे देखेंगी, तत्पश्चात् मधुर-मधुर काम वार्ताएं करेंगी, पुनः प्रत्यंगोंका आलिंगन करके पुलकित हो जांयगी, तदनन्तर मेरे साथ रतिक्रीडा करेंगी, इत्यादि बहुविध मनोरथोंके आदान-प्रदान मनमें करते हुए वे ( श्रीकृष्ण ध्यानमग्न होकर ) ध्यानमें आपको देखते, हैं तथा देखते ही कांप जाते हैं, रोमांचित हो जाते हैं इसी प्रकार अनेक अवस्थाओंको प्राप्त करते हैं ॥ १ ॥

अक्ष्णोर्निक्षिपकज्जलं श्रवणयोस्तापिच्छगुच्छावलीं
मूर्ध्नि श्यामसरोजदाम कुचयोः कस्तूरिकापत्रकम् ।
धूर्तानामभिसारसत्वरहृदां विष्वङ्निकुञ्जे सखि !
ध्वान्तं नीलनिचोलचारुसुदृशां प्रत्यङ्गमालिङ्गति ॥ २ ॥

हे शुभे ! आंखोंमें काजल, कानोंमें मोरपंखके गुच्छे, शिरमें नीले कमलोंकी माला, स्तनोंपर कस्तूरीकी पत्ररचना करके-प्रायः धूर्तनायिकाओंके संकेतस्थानमें जानेके लिए उपर्युक्त आभूषणही हैं, क्योंकि निकुञ्जमें उनके सर्वाङ्गोंको चारों ओरसे काले वस्त्रके समान फैला हुआ गाढान्धकार आलिंगन करता है-चलिये ॥ २ ॥

काश्मीरगौरवपुषामभिसारिकाणा-
माबद्धरेखमभितो मणिमञ्जरीभि:
एतत्तमालदलनीलतमं तमिस्रं
तत्प्रेमहेमनिकषोपलतां तनोति ॥ ३ ॥

हे प्रिये ! केसरिया रंगकी देहधारिणी अभिसारिकाओंके लिए, मणि-मञ्जरियोंसे परिव्याप्त, चारों ओर बंधा हुआ, तमालपत्रोंके तुल्य, काला अन्धकार प्रेमरूपी सुवर्णकी कसौटी है। यथा—सुनार सुवर्णकी परीक्षा कसौटीपर करता है, तद्वत्—प्रेमी प्रेमिकाओंकी परीक्षा, अन्धेरेमें, करते हैं ॥ ३ ॥

हारावलीतरलकाञ्चनकाञ्चिदाम-
केयूरकङ्कणमणिद्युतिदीपितस्य ।
द्वारे निकुञ्जनिलयस्य हरिं निरीक्ष्य
व्रीडामतामथ सखी निजगाद राधाम् ॥ ४ ॥

तदनन्तर मालाओं, सुवर्णकी चमकदार करधनी, केयूर, कंकण आदिकी मणियोंसे प्रदीप्त लतागृहके द्वारपर श्रीकृष्णको देखकर लज्जावती राधासे एक सखी बोली ॥ ४ ॥

(१)वराटिरागे अडवताले अष्टपदी ॥ २१ ॥

मञ्जुतरकुञ्जतलकेलिसदने
विलस रतिरभसहसितवदने
प्रविश राधे ! माधवसमीपमिह ॥ ध्रु० ॥ १ ॥

हे राधे ! सम्भोगकी क्रीडाकी उमङ्गसे उत्कंठिते ! रम्यतर लताभवनके क्रीडागृहमें जाइये, तथा माधवके साथ रमण करिये ॥ १ ॥

नवभवदशोकदलशयनसारे
विलस कुचकलशतरलहारे ॥ प्रविश० ॥ २ ॥

हे राधे ! कलशके सदृश स्तनोंपर चञ्चल माला धारण करनेवाली, नवीन

---

(१) कोई वराडी राग रूपकताल कहते हैं।

अशोकके पत्तोंसे सुसज्जित शय्यापर श्रीकृष्णके साथ रमण करिये ॥ २ ॥

कुसुमचयरचितशुचिवासगेहे
विलस कुसुमसुकुमारदेहे ॥ प्रविश० ॥ ३ ॥

हे पुष्पके समान सुकुमार शरीर धारिणि ! पुष्पोंके चयनसे निर्मित तथा पवित्र इस शयनगृहमें जाइये तथा श्रीकृष्णके साथ आमोद-प्रमोद कीजिये ॥ ३ ॥

चलमलयपवनसुरभिशीते
विलस रसवलितललितगीते ॥ प्रविश० ॥ ४ ॥

हे शृङ्गार युक्त गायनशीले ! मन्द-मन्द बहती हुई मलय गिरिकी हवाकी सुगन्धसे सुगन्धित तथा शीतल इस प्रेमभवनमें जाकर श्रीकृष्णके साथ हास-परिहास करिये ॥ ४ ॥

विततबहुवल्लिनवपल्लवघने
विलस चिरमलसपीनजघने ॥ प्रविश० ॥ ५ ॥

हे दीर्घकालसे प्राप्त उत्तुंग जांघधारिणि ! नानाभांतिके लताओंके पत्तोंसे ढकी हुई इस घनी कुञ्जमें जाकर "कृष्णप्रेमिका" बनिये ॥ ५ ॥

मधुमुदितमधुपकुलकलितरावे
विलस मदनरभसरसभावे ॥ प्रविश० ॥ ६ ॥

हे कामबाणसे रसभाववती ! पुष्प रसका आस्वाद करनेसे आनन्दपूर्वक झंकार करनेवाले भौरोंके झुण्डवाले लताभवनमें जाकर प्रेम लूटिये ॥ ६ ॥

मधुरतरपिकनिकरनिनदमुखरे
विलस दशनरुचिरशिखरे ॥ प्रविश० ॥ ७ ॥

हे (१) शुभदन्ते ! ( दांतों की चमक-दमकसे सुन्दर दन्तकोटिवाली ) कोयलोंकी मधुर वाणियोंसे गुञ्जायमान लतागृहमें प्रवेशकर आनन्द लीजिये ॥७॥

विहितपद्मावतीसुखसमाजे
कुरु मुरारे ! मङ्गलशतानि
भणितजयदेवकविराजराजे ॥ प्रविश० ॥ ८ ॥

---

(१) जिस स्त्रीकी दन्तकोटि सुन्दर होती है वह भाग्यवती होती है ।

पद्मावतीको पुलकित करनेवाले जयदेवकविके लिए हे कृष्ण ! सैकड़ों प्रकार के शुभ ( मंगल ) कीजिये ॥ ८ ॥

त्वां चित्तेन चिरं वहन्नयमतिश्रान्तो भृशं तापितः
कन्दर्पेण च पातुमिच्छति सुधासम्बाधबिम्बाधरम् ।
अस्याङ्कं तदलङ्कुरु क्षणमिह भ्रूक्षेपलक्ष्म्यास्तत्र
क्रीते दास इवोपसेवितपदाम्भोजे कृतः सम्भ्रमः ॥ १ ॥

हे राधिके ! आपको दीर्घ कालतक चित्तमें धारण करनेसे अत्यन्त थके, कामदेवसे सताये हुए, श्रीकृष्ण, आपके सुधारससे परिपूरित, कुन्दरू फलके सदृश लाल-लाल अधरोंको चूसना ( पान करना ) चाहते हैं, अतः हे प्रिये ! इनकी गोदको क्षणमात्र ( बैठकर ) शोभित कर दीजिये, क्योंकि ये कृष्ण, आपके भौंहोंके इशारेपर खरीदे हुए नौकरके समान चलनेवाले तथा आपके चरण कमलोंकी सेवा करनेवाले हैं, अतः इनके समीप जानेमें सम्भ्रम न करिये ॥१॥

सा ससाध्वससानन्दं गोविन्दे लोललोचना ।
सिञ्जाना मणिमञ्जीरं प्रविवेश निवेशनम् ॥ २ ॥

चञ्चल नयनी वह राधा, लज्जा तथा हर्ष सहित अपने मञ्जीरोंको ध्वन्यमान करती हुई उस लता गृहमें चली गयीं ॥ २ ॥

वराडीरागे रूपकताले अष्टपदी ॥ २ ॥

राधावदनविलोकनविकसितविविधविकारविभङ्गम् ।
जलनिधिमिव विधुमण्डलदर्शनतरलिततुङ्गतरङ्गम् ॥
हरिमेकरसं चिरमभिलषितविलासम् ।
सा ददर्श गुरुहर्षवशंवदवदनमनङ्गनिवासम् ॥ ध्रु १ ॥

राधाने, चन्द्रके मण्डलको देखकर चपल तथा बड़ी तरङ्गवाले समुद्रके समान अपने ( राधाके ) मुखरूपी चन्द्रके दर्शनसे आनन्दित विविध भांति की कलाओंसे पूर्ण, समभाववाले, दीर्घकालसे अपने ( राधाके ) साथ रमणाभिलाषी, हर्षसे आह्लादित मुखवाले, एवं कामदेवके गृहरूप, कृष्णको देखा ॥१॥

हारममलतरतारमुरसि दधतं परिरभ्य विदूरम् ।

स्फुटतरफेनकदम्बकरम्बितमिव यमुनाजलपूरम् ॥ हरि० ॥२॥

राधाने, खूब सफेद फेनके ढेरसे मिश्रित यमुना जलके प्रवाहके सदृश, अत्यन्त शुभ्र तथा लम्बे हारको धारण किये हुए श्रीकृष्णको देखा ॥ २ ॥

श्यामलमृदुलकलेवरमण्डलमधिगतगौरदुकूलम् ।
नीलनलिनमिव पीतपरागपटलभरवलयितमूलम् ॥ हरि० ॥३॥

राधाने, पीतवर्णके मकरन्दसे परिव्याप्त नीले कमलके सदृश, सुकुमार देह पर पीताम्बर धारण किये कृष्णको, देखा ॥ ३ ॥

तरलदृगञ्चलचलनमनोहरमदनजनितरतिरागम् ।
स्फुटकमलोदरखेलितखञ्जनयुगमिव शरदि तडागम् ॥हरि० ॥४॥

राधाने, शरद ऋतुमें फूले हुए कमलके मध्यममें स्थित युगल ( दो ) खञ्जन पक्षियोंसे युक्त तालाबके सदृश, चञ्चल नयनोंकी कोरोंसे, मनोहर मुख द्वारा रमणियोंमें अनुराग उत्पन्न करनेवाले, श्रीकृष्णको देखा ॥ ४ ॥

वदनकमलपरिशीलनमीलितमिहिरसकुण्डलशोभम् ।
स्मितरुचिरुचिरसमुल्लसिताधरपल्लवकृतरतिलोभम्॥हरि० ॥५॥

राधाने, मुखकमलके परिशीलन ( अच्छी तरह देखने ) के लिए परस्पर मिले हुए सूर्यके समान प्रकाशित कुण्डलोंसे विभूषित, मुसकराहटकी छविसे मनोहर, प्रफुल्लित अधररूपी पल्लवोंसे रमणियोंको रतिलाभ करानेवाले श्रीकृष्णको, देखा ॥ ५ ॥

शशिकिरणच्छुरितोदरजलधरसुन्दरकुसुमसुकेशम् ।
तिमिरोदितविधुमण्डलनिर्मलमलयजतिलकनिवेशम्॥हरि० ॥६॥

राधाने, चन्द्रकिरणोंसे शोभायमान मेघके मध्यमभागके सदृश, मनोहर पुष्पोंसे शोभायमान केशवाले, अन्धेरेमें उदित चन्द्रमण्डलके समान, शुद्ध मलय पर्वतके चन्दनका तिलक किये हुए, श्रीकृष्णको देखा ॥ ६ ॥

विपुलपुलकभरदन्तुरितं रतिकेलिकलाभिरधीरम् ।
मणिगणकिरणसमूहसमुज्ज्वलभूषणसुभगशरीरम् ॥हरि० ॥७॥

राधाने, अति रोमाञ्चकारी देहवाले, रति कलाओंसे अधीर, मणियोंकी किरण

समूहसे देदीप्यमान आभूषणोंसे शोभित शरीरवाले, श्रीकृष्णको, देखा ॥ ७ ॥

श्रीजयदेवभणितविभवे द्विगुणीकृतभूषणभारम् ।
प्रणमत हृदि विनिधाय हरिं भवजलसुकृतोदयसारम् ॥ हरि० ॥ ८ ॥

हे भक्तो ! श्रीजयदेव कविके स्तवनकी अपेक्षा द्विगुणित अलङ्कारोंसे परिपूरित वा पुण्योदयके तत्त्वरूप श्रीकृष्णको चित्तमें धारणकर प्रणाम कीजिये ॥ ८ ॥

अतिक्रम्यापाङ्गं श्रवणपथपर्यन्तगमन-
प्रयासेनैवाक्ष्णोस्तरलतरतारं पतितयोः ।
इदानीं राधायाः प्रियतमसमालोकसमये
पपात स्वेदाम्बुप्रसर इव हर्षाश्रुनिकरः ॥ १ ॥

प्यारे श्रीकृष्णके दर्शनके समय राधाके नेत्र, प्रान्तभागोंका अतिक्रमण करके कानतक चले गये, जिसके श्रमसे मानों, नयनोंसे पसीना ( आनन्दके कारण ) जलधाराके समान बहने लगा ॥ १ ॥

भजन्त्यास्तल्पान्तं कृतकपटकण्डूतिपिहित-
स्मिते याते गेहाद्बहिरवहितालीपरिजने ।
प्रियास्यं पश्यन्त्याः स्मरशरवशाकूतसुभगं
सलज्जाया लज्जा व्यगमदिव दूरं मृगदृशः ॥ २ ॥

सखियोंके लता गृहके बाहर चली जानेपर खुजलीके मिससे मुसकराहट रोककर सावधान, पलङ्गपर बैठे हुए श्रीकृष्ण, जो कामबाणोंसे विद्ध हो रहे थे, उनके मुखको देखनेपर, राधाकी लज्जा लज्जित होकर दूर चली गयी [ राधाने एकान्तमें लज्जा त्याग दी ] ॥ २ ॥

जयश्रीविन्यस्तैर्महित इव मन्दारकुसुमैः
स्वयं सिन्दूरेण द्विपरणमुदा मुद्रित इव ।
भुजापीडक्रीडाहतकुवलयापीडकरिणः
प्रकीर्णासृग्बिन्दुर्जयति भुजदण्डो मुरजितः ॥ ३ ॥

कंसके कुवलयापीड नामक गजको बाहुदण्डकी क्रीडासे विनाश करनेवाले

श्रीकृष्णका, रक्तके बिन्दुओंसे व्याप्त, भुजदण्डको मानों, श्रीकृष्णने, कुवलयापीडके रणसे हर्षित होकर स्वयं सिन्दूरसे रञ्जित किया हो, तथा जयश्री द्वारा देव-पुष्प ( पारिजातके फूल ) से पूजित मुरारीका बाहुदण्ड आपका कल्याण करे॥ ३॥

सौन्दर्यैकनिधेरनङ्गललनालावण्यलीलायुषो
राधाया हृदि पल्वले मनसिजक्रीडैकरङ्गस्थले ।
रम्योरोज युगेहिखेलनरसित्वादात्मनः ख्यापयन्
ध्यातुः मानसराजहंसनिभतां देयान्मुकुन्दो मुदम् ॥ ४ ॥

इति श्रीगीतगोविन्दे सानन्दगोविन्दो नामैकादशः सर्गः ॥ ११ ॥

सौन्दर्यकी एकमात्रनिधि, कामभार्या ( रति ) की मनोहर लीलाओंको धारण करनेवाली, ऐसी राधाके हृदयस्थलमें जो कामदेवकी क्रीडाके रंगस्थलके समान है उसमें सुन्दर जो उरोज उनमें खेलनेमें अपनेको प्रसिद्ध करनेवाले ध्यान करनेवालोंको मानसरोवरके राजहंसके समान भगवान् मुकुन्द आनन्दकारी हों ॥ ४ ॥

इस प्रकारसे गीतगोविन्द काव्यके सानन्दगोविन्दनामक एकादशसर्गकी "इन्दु"नामक हिन्दी टीका समाप्त हुई ।

---

## द्वादशः सर्गः ।

गतवति सखीवृन्देऽमन्दत्रपाभरनिर्भर-
स्मरशरवशाकूतस्फीतस्मितस्नपिताधराम् ।
सरसमनसं दृष्ट्वा राधां मुहुर्नवपल्लव-
प्रसवशयने निक्षिप्ताक्षीमुवाच हरिः प्रियाम् ॥ १ ॥

सखियोंके चले जानेके पश्चात् अत्यन्त लज्जाके कारण कामदेवके वशीभूत होनेके अभिप्रायसे मृदु हास्ययुक्त अधरोष्ठवाली प्रेमपूरित तथा बार-बार नूतन-पल्लव एवं कुसुमोंकी शय्याको अवलोकन करनेवाली राधाको देखकर कृष्णने कहा ॥ १ ॥

विभासरागे एकतालीताले अष्टपदी ॥ २३ ॥

किसलयशयनतले कुरु कामिनी चरणनलिनविनिवेशम् ।

तव पदपल्लववैरिपराभवमिदमनुभवतु सुवेशम् ।
क्षणमधुना नारायणमनुगतमनुसर मां राधिके ! ॥ध्रु० ॥१॥

हे कामिनि ! कोमल-कोमल पत्तोंकी सेजके ऊपर अपने चरण कमलोंको धरिये, तथा अपने चरणके अनुरूप छविवाले इन शय्याके पल्लवोंका तिरस्कार करिये, हे प्रिये ! मुहुर्त्तमात्रके लिए अपने अनुकूल नारायणके अनुकूल हो जाइये ॥ १ ॥

करकमलेन करोमि चरणमहमागमितासि विदूरम् ।
क्षणमुपकुरु शयनोपरि मामिव नूपुरमनुगतिशूरम् ॥ क्षण० ॥२॥

हे प्यारी ! आप बहुत दूरसे आयी हैं अतः ( थकावट उतारनेके लिए ) मैं अपने हाथोंसे आपके चरणोंको दबाता हूं । कृपया, मेरे समान ही इन नूपुरोंका भी आदर कीजिये । इनको शय्यापर उतारकर धर दीजिये ॥ २ ॥

वदनसुधानिधिगलितममृतमिव रचय वचनमनुकूलम् ।
विरहमिवापनयामि पयोधररोधकमुरसि दुकूलम् ॥ क्षण० ॥३॥

हे राधे ! आप चन्द्रके समान अपने मुख से अमृत तुल्य वाक्य कहिये, तथा विरहशान्त्यर्थ मैं आपके कुचोंपर ढके हुए वस्त्रको हटाता हूं ॥ ३ ॥

प्रियपरिरम्भणरभसवलितमिव पुलकितमन्यदुरापम् ।
मदुरसिकुचकलशं विनिवेशय शोषय मनसिजतापम् ॥क्षण०॥४॥

हे राधे ! प्रियके आलिंगनके लिए शीघ्रतासे रोमांचित तथा अन्योंको दुष्प्राप्य कलशके सदृश इन रतनोंको मेरे वक्षःस्थलपर धरिये, एवं कामपीड़ा हरिये ॥ ४ ॥

अधरसुधारसमुपनय भामिनि ! जीवय मृतमिव दासम् ।
त्वयि विनिहितमनसं विरहानलदग्धवपुषमविलासम् ॥क्षण० ॥५॥

हे भामिनि ! आपके ऊपर अनुरक्त हृदयवाले, अविलासी, विरह ज्वालासे जले हुए शरीरवाले, मृततुल्य सेवकको अपने अधररूपी अमृतपानसे जीवन दान दीजिये ॥ ५ ॥

शशिमुखि ! मुखरय मणिरशनागुणमनुगुणकण्ठनिनादम् ।

मम श्रुतियुगले पिकरवविकले शमय चिरादवसादम् ॥क्षण०॥६॥

हे चन्द्रानने ! अपनी करधनीको अपने मधुरगानके शब्दके समान बजाइये, तथा कोयलके बैनोंसे व्यथित मेरे कानोंकी पीड़ा हरिये ॥ ६ ॥

मामतिविफलरुषा विकलीकृतमवलोकितमधुनेदम् ।
मीलितलज्जितमिव नयनं तव विरम विसृज रतिखेदम् ॥क्षण०॥७॥

हे प्रिये ! अत्यन्त विफल रोषसे उद्वेजित मुझे देखनेके लिए आपके ये नेत्र लज्जायुक्त हो रहे हैं, अतः विश्राम कीजिये क्यों वृथा रति खेदको बढ़ा रहीं हैं॥७॥

श्रीजयदेवभणितमिदमनुपदनिगदितमधुरिपुमोदम् ।
जनयतु रसिकजनेषु मनोरमरतिरसभावविनोदम् ॥ क्षण० ॥८॥

जयदेवकवि द्वारा रचित यह गीत जिसमें पदे-पदे श्रीकृष्णके आनन्दका वर्णन है रसज्ञोंके लिए रसभावका उत्पादक हो ॥ ८ ॥

प्रत्यूहः पुलकाङ्कुरेण निविडाश्लेषे निमेषेण च
क्रीडाकूतविलोकितेऽधरसुधापाने कथाकेलिभिः ।
आनन्दाधिगमेन मन्मथकलायुद्धेऽपि यस्मिन्नभू-
दुद्भूतः स तयोर्बभूव सुरतारम्भः प्रियं भावुकः ॥ १ ॥

जब राधा तथा कृष्णकी परम प्यारी रतिक्रीड़ा शुरू हुई, उस समय प्रगाढ़ आलिंगन करते हुए रोमाञ्च (रोंगटें खड़े होना) बुरे लगते थे, क्रीड़ाके अभिप्रायसे अवलोकन ( पलक गिरना ) भी विघ्नभूत लगता था, केलि-कथा, भी अधर पान करते हुए कष्ट-दायिका प्रतीत हुई, कई प्रकारकी केलि-कलापूर्ण क्रीडासे उत्पन्न आनन्द उस समय सुरतरूपी समरमें बुरा लगता था ॥ १ ॥

दोर्भ्यां संयमितः पयोधरभरेणापीडितः पाणिजै-
राविद्धो दशनैः क्षताधरपुटः श्रोणीतटेनाहतः ।
हस्तेनानामितः कचेऽधरमधुस्यन्देन सम्मोहितः
कान्तः कामपि तृप्तिमाप तदहो कामस्य वामा गतिः ॥ २ ॥

राधाके हाथोंसे बँधे, स्तनोंके भारसे दबे, नाखूनोंसे चिकोटी लिए गये, दन्तक्षत, अधरवाली कटिसे ताड़ित, बालोंको हाथोंसे खींचकर नमाये, अधरोंकी

मधुरताके रससे मोहित कृष्णको अवर्णनीय सन्तुष्टि हुई इसीसे कामदेवकी गति कुटिल है ॥ २ ॥

मारांके रतिकेलिसङ्कुलरणारम्भे तया साहस-
प्रायं कान्तजयाय किञ्चिदुपरि प्रारम्भि यत्सम्भ्रमात् ।
निष्पन्दा जघनस्थली शिथिलिता दोर्वल्लिरुत्कम्पितं
वक्षो मीलितमक्षि पौरुषरसः स्त्रीणां कुतः सिद्ध्यति ॥ ३ ॥

राधाके गात्रोंमें जब रतिकेलिरूपी रण शुरु हुए (राधाके अङ्गोंमें जब कामदेव झलकने लगा) तब उन्होंने साहससे पतिपर विजय प्राप्त करनेके लिए कुछ समयतक कृष्णके वक्षःस्थलके ऊपर सम्भ्रमपूर्वक रति की तो उनकी जांघ स्तब्ध हो गयी, बाहें शिथिल हो गयीं, छाती धड़कने लगी तथा नयन ढंपने लगे, अतः सत्यही है, स्त्रियोंमें पौरुष कहां से आ सकता है ॥ ३ ॥

तस्याः पाटलपाणिजाङ्कितमुरो निद्राकषाये दृशौ
निर्धूताऽधरशोणिमा विलुलितस्रस्तस्रजो मूर्द्धजाः ।
काञ्चीदामदरश्लथां चलमिति प्रातर्निखातैर्दृशो-
रेभिः कामशरैस्तदद्भुतमहो पत्युर्मनः कीलितम् ॥ ४ ॥

राधाका गुलाबी नाखूनोंसे चिह्नित वक्षःस्थल, रात्रिके जागरणसे लाल-लाल आंखें, लालिमा रहित अधरोष्ठ, बिखरा हुआ मालायुक्त केशकलाप, कमरकी करधनीके समीपके वस्त्र खुले हुए, देखकर प्रातः श्रीकृष्णका चित्त काम—बाणोंसे छिदने लगा ॥ ४ ॥

त्वामप्राप्य मयि स्वयंवरपरां क्षीरोदतीरोदरे
शङ्के सुन्दरि ! कालकूटमपिबन्मूढो मृडानीपतिः ।
इत्थं पूर्वकथाभिरन्यमनसो विक्षिप्य वामाञ्चलं
राधायाः स्तनकोरकोपरिचलन्नेत्रो हरिः पातु वः ॥ ५ ॥

हे सुन्दरि ! मैं अनुमान करता हूं कि क्षीरसागरके तीरपर आपने मुझे स्वयंवर लिया, इसीसे सम्भव है, कि आपको न पा करके मृडानीपति (शङ्कर) ने विष पी लिया, इस रीतिसे अपनी पूर्वकथासे दूसरी ओर ध्यान देनेवाली राधाके

स्तनोंके वस्त्र ( अञ्चल ) को हटाकर उनके स्तनोंके अग्रभाग ( चूचुक ) को देखनेवाले श्रीकृष्ण आपको शुभकारी हों ॥ ५ ॥

व्यालोलः केशपाशस्तरलितमलकैः स्वेदलोलौ कपोलौ
स्पष्टा दष्टाधरश्रीः कुचकलशरुचा हारिता हारयष्टिः ।
काञ्चीकाञ्चिद्गताशां स्तनजघनपदं पाणिनाच्छाद्य सद्यः
पश्यन्ती चात्मरूपं तदपि विलुलितं स्रग्धरेयं धुनोति ॥६॥

जिनका जूड़ा बिखर गया है, लटें चञ्चल हो गयीं है, पसीनेकी बूँदोसे गाल भींगे हुए हैं, चुम्बित ओष्ठकी कान्ति स्पष्टरूपेण विदित हो रही है, घड़ेके समान स्तनोंकी शोभासे मुक्तावली तिरस्कृत हो रही है, करधनी खिकुड़ी हुई एक ओर पडी है, प्रातः ऐसी दशापर राधाने, अपने हाथोंसे कुचों तथा जघनको ढँपकर अपने रूपको देखती हुई सूखे हुए (१) फूलोंकी मालाको धारण करती हुई भी श्रीकृष्णको आनन्दकारिणी मालूम पड़ी ॥ ६ ॥

ईषन्मीलितदृष्टिमुग्धहसितं सीत्कारधारावशा-
दव्यक्ताकुलकेलिकाकविकसद्दन्तांशुधौताधरम् ।
श्वासोत्कम्पिपयोधरोपरि परिष्वङ्गात्कुरङ्गीदृशो
हर्षोत्कर्षविमुक्तनिःसहतनोर्धन्यो धयत्याननम् ॥७॥

श्वासोच्छ्वासके कारण कुछ हिलते हुए कुचोंके आलिङ्गनसे, हर्षके अतिरेकसे खिन्न, मृगनयनीके कुछ बन्द नेत्रवाले, हास्य युक्त तथा सीत्कारोंकी धारासे अव्यक्त एवं व्याकुलतासे उत्पन्न शब्दोंसे प्रफुल्लित, दांतोंकी किरणोंसे प्रक्षालित अधरवाले मुखको भाग्यवान हो पीते हैं ॥ ७ ॥

अथ सहसा सुप्रीतं सुरतान्ते सा नितान्तखिन्नाङ्गी ।
राधा जगाद सादरमिदमानन्देन गोविन्दम् ॥ ८ ॥

तत्पश्चात् वह स्वाधीनभर्तृका राधा मैथुनके परिश्रमसे परिश्रान्त कान्तसे अपना शृङ्गार करानेके लिए कहने लगीं ॥ ८ ॥

---

( १ ) स्रग्धराका लक्षण भी है । यथा-म्रभ्नैर्यानां त्रयेण त्रिमुनि यतियुता स्रग्धरा कीर्तितेयम् ।

रामकरीरागे रूपकताले (१) अष्टपदी ॥ ४ ॥

कुरु यदुनन्दन चन्दनशिशिरतरेण करेण पयोधरे ।
मृगमदपत्रकमत्र मनोभवमङ्गलकलशसहोदरे ॥
निजगाद सा यदुनन्दने क्रीडति हृदयानन्दने ॥ ध्रु० १ ॥

चित्तको प्रफुल्लित करनेवाले श्रीकृष्णके साथ क्रीडा करती हुई राधाने कहा— "हे यदुनन्दन ! चन्दनके सदृश शीतल हाथोंसे कामदेवके मङ्गल कलशके समान मेरे स्तनोंपर कस्तूरीसे पत्र रचना कीजिये ॥ १ ॥

अलिकुलगञ्जनसञ्जनकं रतिनायकसायकमोचने ।
त्वदधरचुम्बनलम्बितकज्जलमुज्ज्वलय प्रियलोचने ॥निज०॥२॥

हे पीताम्बरधारिन् ! काम-बाणोंको छोड़नेवाले मेरे नयनोंमें भ्रमरोंके झुण्डके सदृश तथा आपके अधरोंसे चूमनेसे मिटे हुए मेरी आंखोंके कजलको उज्वल करिये ॥ २ ॥

नयनकुरङ्गतरङ्गविकासनिरोधकरे श्रुतिमण्डले ।
मनसिजपाशविलासधरे शुभवंशे निवेशय कुण्डले ॥ निज० ॥३॥

हे प्यारे प्रीतम ! नेत्ररूपी मृगोंके विलासको रोकनेवाले मेरे कानोंमें कामदेवके पाश सदृश कुण्डल पहनाइये ॥ ३ ॥

भ्रमरचयं रचयन्तमुपरि रुचिरं सुचिरं मम सम्मुखे ।
जितकमले विमले परिकर्मय नर्मजनं कमलकं मुखे ॥ निज०॥४॥

हे मनोहरवेषधारिन् ! जिसके ऊपर मधुपावली उड़ रही हैं तथा जो कामको उत्पन्न करनेवाली है, एवं जो मनोहर तथा स्वच्छ कमलोंको जीतने वाले मेरे मुखपर गिर रही है, ऐसी अलकावलीको आप गूथिये । [ अर्थात् मेरे बालोंको संवारिये ] ॥ ४ ॥

मृगमदरसवलितं ललितं कुरु तिलकमलिकरजनीकरे ।
विहितकलङ्ककलं कमलाननविश्रमितश्रमसीकरे ॥ निज०॥ ५ ॥

हे प्राणेश्वर ! पसीनेसे युक्त अपूर्ण इन्दुके समान, भालपर कलङ्करेखाके

(१) कोई यति तालभी कहते हैं ।

समान मेरी भालपर कस्तूरीसे तिलक लगाइये ॥ ५ ॥

**मम रुचिरे चिकुरे कुरु मानद मनसिजध्वजचामरे।**
**रतिगलिते ललिते कुसुमानि शिखण्डिशिखण्डकडामरे ॥निज०॥६॥**

हे मानदाता! रतिके समय ढीले हुए मेरे मोरपङ्खके समूहके सदृश सुन्दर जूड़ेमें, जो कामदेवकी ध्वजा चामरके समान है, फूल गूँथिये ॥ ६ ॥

**सरसघने जघने मम शम्बरदारणवारणकन्दरे।**
**मणिरशनावसनाभरणानि शुभाशय वासय सुन्दरे ॥ निज०॥७॥**

हे प्राणनाथ! मेरे, कामदेवरूपी मदोन्मत्त हाथकी गुफा (कन्दरा) तथा सुन्दर कमरके ऊपर आप रत्नोंकी करधनी एवं वस्त्र, आभूषण पहनाइये ॥७॥

**श्रीजयदेववचसि शुभदे हृदयं सदयं कुरु मण्डने।**
**हरिचरणस्मरणामृतनिर्मितकलिकलुषज्वरखण्डने ॥ निज०॥८॥**

हे रसिको! श्रीकृष्णके ध्यानरूपी अमृतसे कलियुगी पापनाशक, कल्याणप्रद जयदेवकवि द्वारा रचित शुभप्रद गीतकी ओर अपने अन्तःकरणोंको सदयं यथास्यात्तथा कीजिये ॥ ८ ॥

**रचय कुचयोः पत्रं चित्रं कुरुष्व कपोलयो-**
**र्घटय जघने काञ्चीमञ्च स्रजा कबरीभरम्।**
**कलय वलयश्रेणीं पाणौ पदे कुरु नूपुरा-**
**विति निगदितः प्रीतः पीताम्बरोऽपि तथाकरोत् ॥ १ ॥**

राधाने कहा—"हे प्राणप्रिय! मेरे स्तनोंके ऊपर पत्र रचना कीजिये, गालोंपर चित्र रचना कीजिये, कमरमें करधनी पहनाइये, जूड़ेमें फूलोंको गूँथिये, हाथोंमें कड़े पहनाइये, पैरमें नुपुर (छागल आदि) पहनाइये। पीताम्बरधारी कृष्णने भी हर्षान्वित होकर वैसा ही किया ॥ १ ॥

**पर्यङ्कीकृतनागनायकफणाश्रेणीमणीनां गणे**
**सङ्क्रान्तप्रतिबिम्बसङ्कलनयाविभ्रद्वपुर्विक्रियाम्।**
**पादाम्भोरुहधारिवारिधिसुतामक्ष्णां दिदृक्षुः शतैः**
**कायव्यूहविचारयन्नुपचिताकूतो हरिः पातु वः ॥ २ ॥**

जिनके शय्या स्थानमें शेषनाग हैं अतः शिरकी माणियोंसे पड़े हुए प्रतिबिम्ब द्वारा अनेक वेषोंको धारण करनेवाले चरण-सेविका लक्ष्मीको सैकड़ों प्रकारसे देखनेके लिए अनेक रूपोंको धारण करनेवाले, कामभावयुक्त भगवान् आपका मङ्गल करें ॥ २ ॥

**यद्गान्धर्वकलासु कौशलमनुध्यानं च यद्वैष्णवं**
**यच्छृङ्गारविवेकतत्त्वरचनाकाव्येषु लीलायितम् ।**
**तत्सर्वं जयदेवपण्डितकवेः कृष्णैकतानात्मनः**
**सानन्दाः परिशोधयन्तु सुधियः श्रीगीतगोविन्दतः ॥३॥**

जो गानविद्यामें प्रवीणता है, कृष्णजीका जो ध्यान है, तथा काव्योंमें जो शृङ्गार रसके भेदोंकी रचनाएँ हैं उनको श्रीकृष्णका ध्यान करनेवाले, पण्डितजन, खूब ध्यानसे जयदेवकविकृत गीतगोविन्दसे परिशोधन करें ( सीखें ) ॥ ३ ॥

**साध्वी (१)माध्वीकचिन्ता न भवति भवतः (२) शर्करे कर्कशासि**
**(३) द्राक्षे द्रक्ष्यन्ति के त्वाममृत मृतमासि (४)क्षीर नीरं रसस्ते ।**
**(५) माकन्द ! क्रन्द कान्ताधर धरणितलं गच्छ यच्छन्ति भावं**
**यावच्छृङ्गारसारस्वतमिह जयदेवस्य विष्वग्वचांसि ॥ ४ ॥**

जयदेवकवि अभिमानसे अपने काव्यकी प्रशंसामें लिखते हैं—"इस लोकमें जबतक शृङ्गार-रस-मूलक काव्य स्थित है तबतक, हे माध्वीक ! तेरी चिन्ता व्यर्थ है—अर्थात् तेरी मिठास निरर्थक है। हे शर्करे ! तुम इसकी तुलनामें कठिन हो। हे द्राक्षे ! तुम्हें इसके सामने कौन देखेगा ? अर्थात् कोई नहीं। हे अमृत तुम इसके सामने मृत तुल्य हो। हे क्षीर ! तुम्हारा स्वाद इसके आगे पानी सा है। हे माकन्द ! तुम इसके कारण रोओ। हे मनोरमा नायिकाके अधर तुम भी पातालमें चले जाओ। अर्थात् मेरे काव्यरसकी तुलनामें उपर्युक्त सभी वस्तुएं नीरस हैं ॥ ४ ॥

---

( १ ) माध्वीक = महुआ । ( २ ) शर्करा = चीनी, ( शक्कर ) ।
( ३ ) द्राक्षा = छोहारा । ( ४ ) क्षीर = दूध ।
( ५ ) माकन्द = मीठा फल ।

श्रीभोजदेवप्रभवस्य राधादेवीसुतश्रीजयदेवकस्य ।
पराशरादिप्रियवर्गकण्ठे श्रीगीतगोविन्दकवित्वमस्तु ॥५॥

इति श्रीगीतगोविन्दे महाकाव्ये जयदेवपण्डितकृतौ सुप्रीत-
पीताम्बरो नाम द्वादशः सर्गः समाप्तः ॥ १२ ॥

श्रीभोजदेवके पुत्र तथा श्रीमती राधा देवीकी कोंखसे प्रादुर्भूत जयदेवकविकी यह वाणी–गीतगोविन्द कविता–श्रीयुक्त पराशरादिक पूर्व कवियोंके कण्ठमें समर्पित हो ॥ ५ ॥

इति पण्डित-श्रीकेदारनाथशर्मणा 'इन्दु' नामक भाषाटीका-
नुवादितं गीतगोविन्दकाव्यं समाप्तम् ।

शुभम् ।

# राधाविनोदकाव्यम् ।

मालीनो घनमाली मालीनो वनमाली
मालीनो वनमाली मालीनोऽवतु माली ॥ १ ॥
विधुसुहृद्विरहानलपीडिता
विधुसुहृत्तरलाऽनिलपाडिता ।
विधुसुहृद्वदनाऽलिमपीडिता
विधुसुहृत्सुगिरोऽकिरदीडिता ॥ २ ॥
उदयते दयते दयते शशी
सखि करैरकरैस्तिमिराकरैः ।
दिशमिमां चर मां चरमारमं
कमलकोमललोलविलोचनम् ॥ ३ ॥
मुकुदबन्धुरबन्धुरबन्धुरः
सतनुतेऽतनुते तनु ते ततः ।
हिमकरोऽहिमतांहिमतांमतां
किमनु मां सदृशं सदृशं विधोः ॥ ४ ॥
कमलिनीमलिना मलिनाऽलिना
विचलताच लतासुलताशुभाम् ।
विधुतभां विधुतां विधुभानुभि-
र्नयनयोरनयोर्नयसीनयोः ॥ ५ ॥
सखि विभाति विभाऽतिविभाऽविभा
न सरसीसरसारससमाकरैः ।

अलिकुलैर्विधुना विधुता धुता
विनमदञ्जमुखी विमुखी स्थिता ॥ ६ ॥
कुमुदिनीदयितो दयितोऽनतां
निजकरैरकरैर्दहति स्फुटम् ।
यदयमेकपदे विपदेऽभव-
द्विकचपुष्करिणीहरिणीदृशः ॥ ७ ॥
विधुरिता धुरिता धुरितादहन्
विधुरयं जनितो जनितोऽङ्कभृत् ।
इह तदाक्षिगते क्षिगतेऽब्जिनी
रविमतिर्विमतिर्निमिमील सा ॥ ८ ॥
मलयपन्नगपन्नगमण्डली-
कवलितो वलितो नु वनानिलः ।
अदयमङ्गमदङ्ग मदङ्गकं
दहति यद भ्रमयद् भ्रमयन्नयम् ॥ ९ ॥
अयि रसालवनी नवनीरनी-
रनवनी नवनीपवनीवती ।
अलिकुलालिकुलाऽलिकुलाकुला
प्रति हि मामहिमामहिमा हिमा ॥ १० ॥
बकुलमाकुलमालि परागितं
मधुपरागपरागपरालिभिः ।
विशदशारदशारदशारदं
शशकलङ्ककलङ्ककलङ्कितम् ॥ ११ ॥
नवमशोकमशोकमशोकदे

सुरभितारभितालिरतारतम् ।
सखि समाश्रयमाश्रय माश्रयः
कमलिनीमलिनीप इवाऽगतः ॥ १२ ॥
सखि हिताऽऽसिमतासिमतात्थ मां
नवमशोकमशोकमशोकदाम् ।
तदिह मामव मामव माममां
व्रज हरिं नवनीरदनीरदम् ॥ १३ ॥
इति सखीगदिताऽगदिताऽदिता-
नवनराय वराय वराय वा ।
इति गिरं कलया कलया कला
पटुगिरा मृदुता मृदुतादुता ॥ १४ ॥
मलयजं तनुतेऽतनु ते तना
सहचरीनलिनी नलिनीदलम् ।
सुनयनाऽनलदं नलदं च सा
तदपि सीदति सीदति बन्धुता ॥ १५ ॥
समुदितेऽमुदितेऽमुदितेक्षणे
हिमकरेमकरेनकरे श्रुती ।
पिकरवेऽवरवेवरवेति सा
हरिणलांछनलांछनलांछना ॥ १६ ॥
न सहते सहते सहते सखी
तव वियोगवियोगमयोगहृत् ।
सपदि तां तरुणीं सरणिं मणिं
किरतु नाम नवं नवनीविजम् ॥ १७ ॥

अथ तया कलया कलया शुभां
　　वनजदामजदामजदीप्तिमान् ।
हरिरगात्तमगात्तमगाच्च सा
　　मुदमतीवमतीवदृशोः स्थितम् ॥ १८ ॥

रामचन्द्रकविना कविनाऽदः
　　पूरुषोत्तमसुतेन सुतेन ।
राधिकाहृदयशोकदमासी-
　　द्राधिकाहृदयशोकदमासीत् ॥ १९ ॥

इति श्रीपुरुषोत्तमात्मजजनार्दननन्दनरामचन्द्रकविकृतं
राधाविनोदाख्यं काव्यं समाप्तम् ॥

---

## अथ महालक्ष्मीस्तोत्र प्रारभ्यते ।

### अगस्तिरुवाच ।

मातर्नमामि कमले कमलायताक्षि । श्रीविष्णुहृत्कमलवासिनि विश्वमातः ॥ क्षीरोदजे कमलकोमलगर्भगौरि । लक्ष्मि प्रसीद सततं नमतां शरण्ये ॥ १ ॥

त्वं श्रीरुपेन्द्रसदने मदनैकमातः । ज्योत्स्नासि चन्द्रमसि चन्द्रमनोहरास्ये ॥ सूर्ये प्रभासि च जगत्रितये प्रभासि । लक्ष्मि० ॥ २ ॥

त्वं जातवेदसि सदादहनात्मशक्तिः । वेधास्त्वया जगदिदं विविधं विदध्यात् ॥ विश्वंभरोऽपि विभृयादखिलं भवत्या । लक्ष्मि० ॥ ३ ॥

त्वत्यक्तमेतदमले हरते हरोऽपि त्वं पासि हंसि विदधासि परावरासि ॥ ईड्यो बभूव हरिरप्यमले त्वदाप्त्या । लक्ष्मि० ॥ ४ ॥

शूरः स एव सगुणो स बुधः स धन्यो । मान्यः स एव कुलशीलकलाकलापैः ॥ एकः शुचिः सहि पुमान् सकलेऽपि लोके । यत्रापतेत तव शुभे करुणाकटाक्षः ॥ ५ ॥

यस्मिन्वसे क्षणमहो पुरुषे गजेऽश्वे । स्त्रैणे तृणे सरसि देवकुले गृहेऽन्ने । रत्ने पतत्रिणि पशौ शयने धरायां । सश्रीकमेव सकले तदिहास्ति नान्यत् ॥ ६ ॥

त्वत्स्पृष्टमेव सकलं शुचितां लभेत । त्वत्यक्तमेव सकलं त्वशुचीह लक्ष्मि ॥ त्वन्नाम यत्र च सुमङ्गलमेव तत्र । श्रीविष्णुपत्नि कमले कमलालयेऽपि ॥ ७ ॥

लक्ष्मि श्रियं च कमलां कमलालयाञ्च पद्मां रमां नलिनयुग्मकराञ्च माञ्च ॥ क्षीरोदजाममृतकुम्भकरामिराञ्च । विष्णुप्रियामिति सदा जपतां क दुःखम् ॥ ८ ॥*

---

* कोल्हापुरमें लक्ष्मी मन्दिरमें लक्ष्मी प्रसीदार्थ यह स्तोत्र अगस्त्यजीने पढ़ा था ॥

## श्रीकोषः

याद रखिये इसी "श्रीकोश" के द्वारा आपको एक शब्दके कई अर्थ एवं पर्याय पर्याप्तरूपेण मिल सकेंगे। इसमें लिङ्ग क्रिया, क्रियाविशेषण, संज्ञा, भाव वाचकसंज्ञा, आदि का निर्देश समुचित रूपसे दिया गया है। एक्सरे, कुर्सी, टेबुल, आलमारी, बेंच, म्युनिसिपलिटी, कचहरी, जज, कोतवाल, थानेदार, आदि वर्तमान चलते–फिरते शब्दों की ओर (जिनकी संस्कृत बनाने में आप लोगोंको कठिनाई पड़ती थी) परिवर्द्धित तृ० संस्करण में और भी विशेष ध्यान दिया गया है १।)

## तर्कसंग्रहः

### लक्षण-टिप्पणी-सहित 'इन्दुमती' भाषा टीका

प्रथमपरीक्षोपयोगी लक्षण टिप्पणी के साथ इन्दुमती नामक विस्तृत भाषा टीका सहित इस अभिनव संस्करण को देखकर आप अत्यधिक प्रसन्न होंगे प्रथमपरीक्षामें आनेयोग्य सभी प्रश्नोंके उत्तर आपको इस संस्करणमें प्राप्त होंगे।=)

## संस्कृतरचनानुवादशिक्षकः।

(अभिनव सन्धि, व्याकरणादि परिशिष्ट परिवर्द्धित तृतीय संस्करण)

इसमें प्रथमापरीक्षा के छात्रों को अनुवाद करने के नियम अत्यन्त सरल रूपमें समझाए गये हैं और तदनुसार अनुवादार्थ अभ्यास भी दिए गये हैं। अभ्यासार्थ वाक्यों में आए हुए प्रत्येक कठिन शब्दों के संस्कृत से हिन्दी तथा हिन्दी से संस्कृत अनुवाद करने के प्रबन्ध भी पुस्तक के अन्त में ९० प्रकरणों में दे दिये गये हैं जिनसे अनुवाद करने में अत्यन्त सरलता हो गई है। पुस्तक की उपादेयता पर गवर्नमेण्ट सं० कालेज, हिन्दू विश्वविद्यालय काशी तथा आगरा, खुर्जा, सहारनपुर, इन्दोर आदि के बड़े बड़े विद्वानों ने मुक्तकण्ठ से प्रशंसापत्र दिए हैं जो पुस्तक में प्रकाशित आप को प्राप्त होंगे। प्राथमिक विद्यार्थियों के लिए इस से बढ़कर अनुवाद के लिए पथ–प्रदर्शक दूसरी पुस्तक नहीं है। २।)

## रूपचन्द्रिका

'लघुकौमुदी' में आए हुए तथा उनके समान और भी शब्दों एवं धातुओं के अर्थ सहित रूपावली। इस संस्करण में सभी धातुओं का सेट, अनिट्, सकर्मक, अकर्मक, परस्मैपदी, आत्मनेपदी आदि का उल्लेख भी कर दिया गया है। व जगह २ पर विशेष सूत्र भी लिख दिये गये हैं। इतना ही नहीं अच्सन्धिस से लेकर चुरादिपर्यन्त हिन्दी भाषार्थ सहित सभी अवशिष्ट प्रयोग तथा 'समासचक्र' भी परिशिष्ट में दे दिये गये हैं। २।।)



प्राप्तिस्थानम्–चौखम्बा संस्कृत पुस्तकालय, बनारस।

# सिद्धान्तकौमुदी-बालमनोरमा

वर्तमान विकट परिस्थिति में कागज का दुष्प्राप्य होने से 'सिद्धान्तकौमुदी-बालमनोरमा' का कोई भी उपयुक्त संस्करण प्राप्त नहीं हो रहा था जिससे विद्यार्थी व अध्यापक दोनों की कठिनाई दिन दिन बढ़ती चली जारही थी। परमात्मा की असीम कृपा से हमारा भगीरथ प्रयत्न सफल हो रहा है। कारकान्त भाग ५)
अवशिष्ट भाग छप रहे हैं

# नागानन्दं नाटकम्

## भावार्थदीपिका-संस्कृत-हिन्दी-टीकाद्वयोपेतम्।

इस अभिनव परिवर्द्धित द्वितीय संस्करण में सम्पूर्ण प्रन्थको सर्वाङ्ग पूर्ण परीक्षोपयोगी बना दिया गया है। अतिशय सरल व विस्तृत भाषा टीका को यथास्थानमें संनिवेशित करके प्रत्येक सर्ग का परीक्षोपयोगी संक्षिप्त हिन्दी कथासार भी दे दिया गया है। द्वितीय संस्करण ३॥)

# सिद्धान्तकौमुदी जेबी-गुटका

## सूत्रसूची-धातुसूची-सूत्रांक-वार्तिकांक सहित

### सम्पादकः—पण्डित गोपाल शास्त्री नेने

सिद्धान्तकौमुदीका ऐसा सुन्दर जेबी गुटका का मनोहर संस्करण यह प्रथम बार ही छपा है। प्रति दिन सिद्धान्त कौमुदी की आवृत्ति करना विद्यार्थियोंके लिये आवश्यक है। सुबह-शाम घूमते-फिरते समय तथा परदेश-यात्रा करते समय विद्यार्थियोंका बहुत ही समय व्यर्थमें व्यतीत होजाता है। अब जहाँ कहीं जाना हो इस संस्करण को जेब में रख लीजिये और जब चाहें सिद्धान्तकौमुदीकी आवृत्ति किजीये ३)

# वृत्तरत्नाकरः

## भट्टनारायणभट्टीयव्याख्या सहित सुविस्तृत टिप्पणी व 'मणिमयी' भाषा टीका विभूषित।

विस्तृत भाषा टीका से परिवर्धित इस द्वितीय संस्करण से परीक्षार्थी विद्यार्थियों की सारी कठिनता दूर हो जायगी। नारायणभट्टीय व्याख्या के साथ २ सुविस्तृत टिप्पणी होने पर ही प्रथम संस्करण संस्कृत संसार में विशेष स्थान पाचुका था, पर इस बार मणिमयी विस्तृत भाषा टीका होने से तो यह द्वितीय संस्करण अत्यधिक परीक्षोपयोगी हो गया है। ३)